अध्याय -- 1

प्रेमचन्द का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

प्रेमचन्द का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

'मेरा जीवन सपाट समतल मैदान है, जिसमें गड्ढे तो कहीं-कहीं है, पर टीलों, पर्वतों, घने जंगलों, गहरी घाटियों और खंडहरों का स्थान नहीं है। -प्रेमचन्द ''1

जैनेन्द्र जी जब पहली बार प्रेमचन्द को मिले तब उन्होंने पहली नजर में प्रेमचन्द के व्यक्तित्व को परखा उसके बारे में वे लिखते हैं--" जो सज्जन ऊपर खड़े थे उनकी बड़ी घनी मूछें थी, पांच रूपये वाली लाल इमली की चादर ओढ़े थे, जो काफी पुरानी और चिकनी थी, बालों ने आगे आकर माथे को कुछ ढक सा लिया था, और माथा छोटा मालूम होता था, सिर जरूरत से ज्यादा छोटा प्रतीत हुआ, मामूली धोती पहिने हुए थे, जो घुटनों से जरा नीचे तक आ गई थी,ऑखों में खुमारी भरी दिखी, मैंने जान लियाा कि प्रेमचन्द यही है।'' 2

उसी तरह जब श्री जनार्दन राय उनसे पहली बार मिले तब उनके अनुसार प्रेमचन्द की मुखाकृति का वर्णन उन्होंने इस प्रकार किया है--

" मैंने उस कमरे में मुड़कर झॉका दो तीन व्यक्तियों से घिरी, मेज पर झुकी सी कागज पत्रों के ढेर से आच्छादित मैंने एक मूर्ति देखी, रेशमी तमाबुई, बिखरे बाल, पतली तीखी भवों पर संकुचित पर प्रभविष्णु ललाट, अनुभवकी रेखाओं से खुदा और सरल, गहरी देखने वाली ऑखे, प्रेमचन्द वही-वही मछली के अगले पज्जों जैसी ब्रुशनुमा मूंछे और सारी मुद्रा पर स्वप्नलीनता का अत्यन्त सूक्ष्म रोगन, यही प्रेमचन्द हैं।'' 3

यही प्रेमचन्द जी की मुखाकृति को दक्षिण के हिन्दी प्रचारक श्री व्रजनन्दन शर्मा, अपने अनुभव से स्पष्ट करते हुए कहते है--" आज भी उनके अनुभवों की गहराई बताने वाला झुर्रीदार चेहरा, करुणा से छलछलाती ऑखे, उनकी जिन्दादिली को व्यक्त करने वाली मुस्कराहट, साहित्य-सेवा की चिन्ता में डूबा सिकुडन वाला ललाट, दिमाग की उलझी हुई समस्याओं की तरह उलझी हुई मूँछे, आर्थिक दुरावस्था की धोतिका झुकी हुई कमर और पूँजीपतियों का शिकार होने की घोषणा करने वाली रक्त-हीनता और सफेदी ऑखों में घूम रही है।''4

ये मात्र कुछ लोगों के मत थे। उन्होंने अपनी दृष्टि को यहॉ अंकित किया है लेकिन ऐसे तो कई हैं जो प्रेमचन्द की आभा एवं व्यक्तित्व को कुछ अलग रूप से स्पष्ट करते हैं, लेकिन फिर भी इनमें से कोई भी पूर्ण रूप से संतुष्ट नहीं है कि उनका वर्णन वैसा ही है जैसे प्रेमचन्द जी थे। वे लोग प्रेमचन्द की सही आकृति और मुद्रा को नहीं पकड़ पाये ऐसा प्रतीत होता है। शायद बहुत कुछ कहना रह गया हो और अभी भी उनके बारे में कहना बाकी है ऐसा प्रतीत होता है।

प्रेमचन्द जी के शरीर के अंगों में अगर हम उनके मुखमण्डल की बातें करे तो ललाट, ऑख, नाक, कान, दॉत, मुख, ओष्ठ, ठोड़ी, कपोल के आकार आदि में हमें उनके उम्र के ढलते पड़ाव तक आते-आते विभिन्न परिवर्तन दिखाई देते हैं। चाहे वह 1907 का चेहरा हो या 1924-25 का या 1930 या फिर 1936 का। हर एक मुखमण्डल में हमें विभिन्नता महसूस होगी। जब वे अपनी पत्नी शिवरानी देवी के साथ भी बैठे होते हें तो उनके मुखमण्डल में एक अजीब सी लालिमा आ जाती है। प्रेमचन्द की उम्र के विभिन्न पड़ाव की कुछ तस्वीरें निम्न हैं-

प्रेमचन्द के विविध रूप

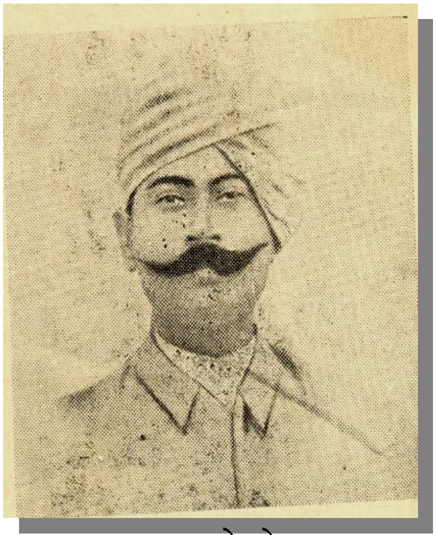

1907 के प्रेमचन्द

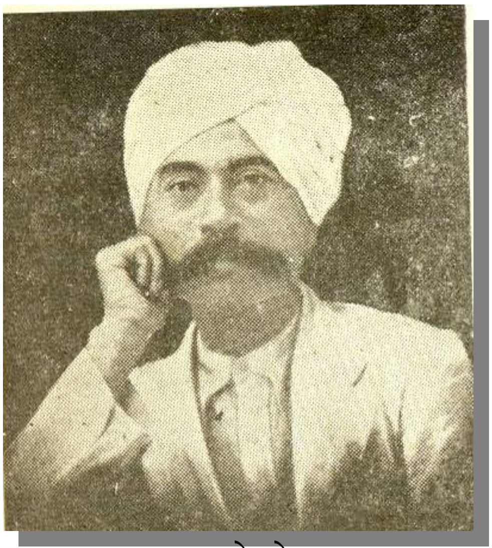

1924 के प्रेमचन्द

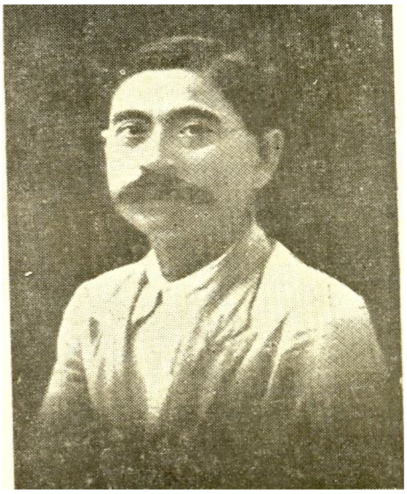

1925 के प्रेमचन्द

1930 के प्रेमचन्द

1936 के प्रेमचन्द

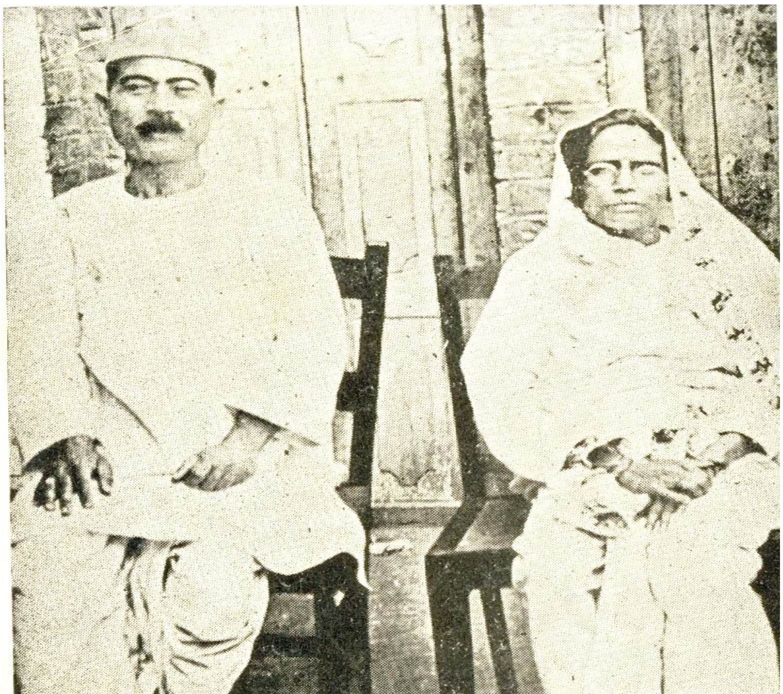

प्रेमचन्द अपनी पत्नी शिवरानी के साथ

इससे स्पष्ट होता है कि प्रेमचन्द का व्यक्तित्व एवं उनकी मुखाकृति का वर्णन करना इतना आसान नहीं है। वे कभी जोशीले, कभी अख्खड़ नबाबों की तरह दिखते हैं, तो कभी खानदानी, कभी शान्त चित्त तो कभी प्रेम के सागर में दिखाई देते हैं। उनके शब्द चित्रण में बहुत कुछ शेष रह जाता है। हम उनको चित्रित करने का जितना प्रयास करेंगे, उसमें उतना ही शेष रह जाता है। इससे अच्छा है कि पात्र का ध्यान न कर दूध की ओर देखा जाय, वृक्ष को न देखकर फल की ओर ध्यान दिया जाय। मनुष्य के शरीर को न देख उनके गुणों को देखा जाय।

जन्म :--

प्रेमचन्दजी का जन्म सावन वदी 10 मीं यानी 31 जुलाई, सम्वत् 1937 अर्थात सन् 1880, दिन शनिवार को पांडेपुर के निकट बनारस से पॉच मील दूर 'लमही' के पुश्तैनी मकान में एक साधारण कायस्थ परिवार में हुआ था।

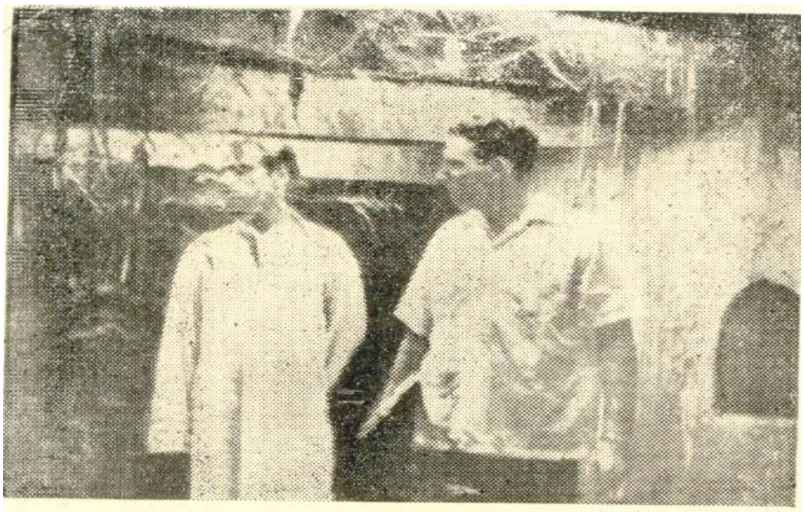

प्रेमचन्दजी का जन्म स्थल

प्रेमचंद का मूल नाम 'धनपतराय' था। वैसे तो प्रेमचंद के पाठक उन्हें तीन विभिन्न नामों से जानते हैं। उनके पिता उन्हें धनपतराय, उनके चाचा उन्हे नबाबराय, तथा वे स्वयं अपने आप को प्रेमचंद कहते थे। उनके मित्र उन्हें 'बम्बूक' नाम से बुलाते थे।

प्रेमचंद के पिता का नाम मुंशी अजायबलाल श्रीवास्तव था। धनपतराय के पितामह गुरुसहाय एक किसान थे। उनके पास केवल कुछ एकड़ जमीन थी जिससे अत्यन्त अल्प आय होती थी। पिता अजायबराय डाकखाने में क्लार्क थे। बेटे के जन्म वे मात्र 20 रूपये मासिक पाते थे। 45 रूपये तक पहुॅचते-पहुॅचते उनकी मृत्यु हो गई। चूॅकि पहले के जमाने में क्लार्क को 'मुशी' कहा जाता था। इसलिये काफी समय तक मुंशीगीरी

करने पर उन्हें 'मुंशी' की पदवी मिल गई। बनारस जिले के पांडेपुर मौजे में यह निर्वाह के लिए परिपूर्ण नहीं थी। प्रेमचन्द की वंशावली को समझने के लिए निम्न लिखित चार्ट सहायक होगा।

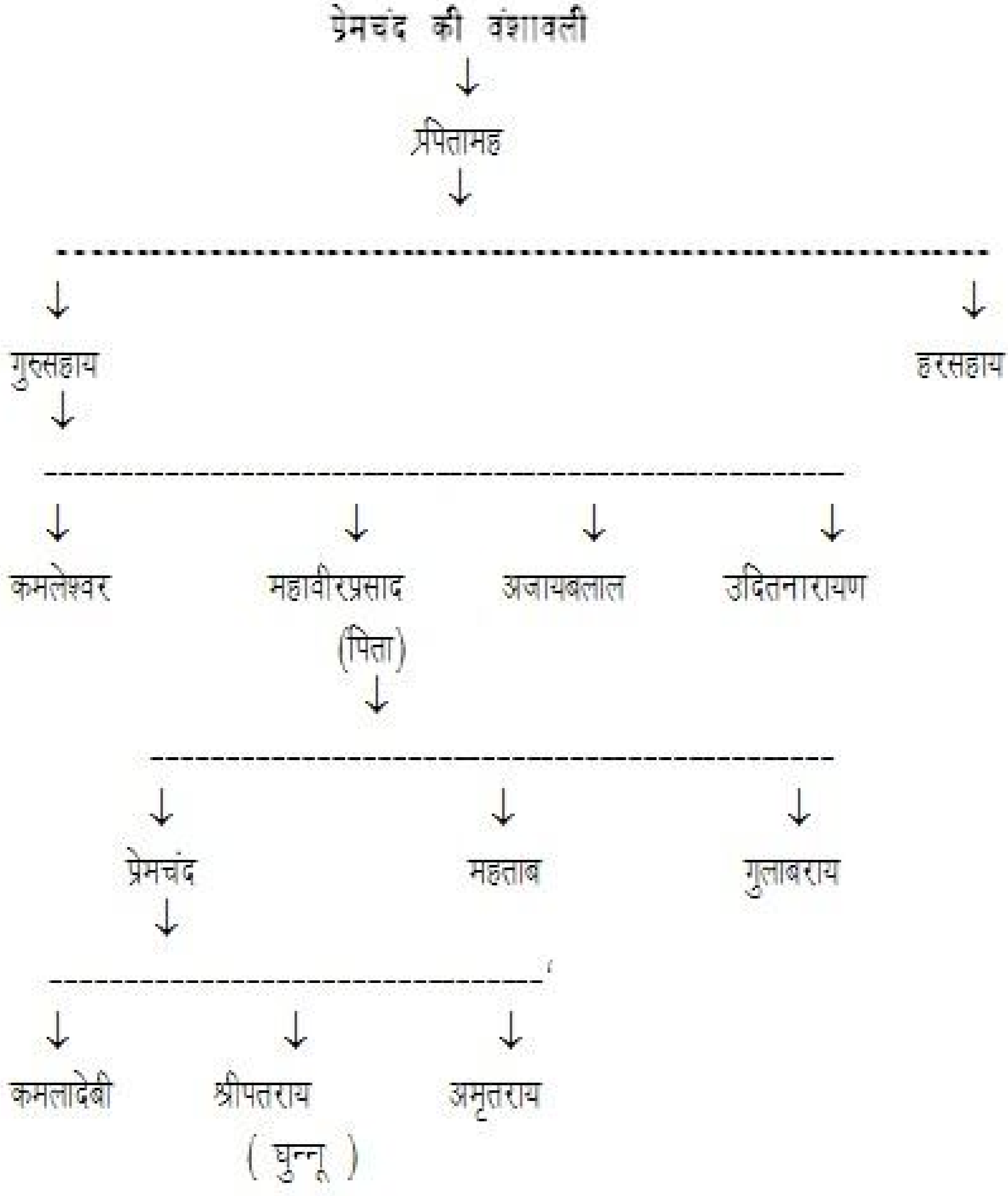

"सौभाग्य से मुंशी गुरुसहाय के चार पुत्र उत्पन्न हुए कमलेश्वरलाल, महावीर प्रसाद, अजायबलाल, और उदितनारायण लाल। उनके बड़े पुत्र कमलेश्वर लाल की मृत्यु बहुत कम अवस्था में ही हो गई थी। अपने भाई अजायबलाल की भॉति महावीरप्रसाद भी डाकतार विभाग में नौकर थे। यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि महावीरप्रसाद का विवाह हुआ था या नहीं, पर वे नि:सन्तान थे। मुंशी अजायबलाल का विवाह 'आनन्दी देवी' के साथ हुआ था और उन्हें एक पुत्र हुआ था, जिसका नाम धनपतराय रखा गया। सात वर्ष की अल्पावस्था में ही इस बच्चे की मॉ की मृत्यु हो गई तब अजायबलाल ने दूसरा विवाह किया। वह बराबर डाक विभाग में काम करते रहे और अब नौकरी से अवकाश प्राप्त किया तो उस समय वह एक सब पोस्ट ऑफिस के केवल छोटे पोस्टमास्टर थे। अधिकतम वेतन, जिस तक वे पहॅुचे थे केवल 40 रूपये मासिक था। सबसे छोटे भाई उदित नारायण लाल भी डाक विभाग में एक मुंशी थे अजायबलाल के तीन पुत्र थे। धनपतराय महताबराय और गुलाबराय।'' 5

ये तो उनके पिताजी का पूरा परिवार था, जहॉ प्रेमचन्द के पिता अजायबलाल का स्थान है वैसे पहले से ही यह परिवार सम्पन्न नहीं था और आगे जाकर पारिवार की आर्थिक स्थिति और बिगड़े लगी। गांव में जिस तरह से सभी साधारण श्रेणी के परिवार रहते हैं वैसे ही मुंशी जी का परिवार भी रहता था। उनके रहन-सहन का तरीका पूरा देहाती था। शहर के लोगों को मिलने वाली सुविधाएं, मनोरंजन आदि इस परिवार के बच्चों को प्राप्त होने का नसीब कहॉ था। इस परिवार के बच्चों को देखकर पता चल जाता था कि यह परिवार कितना निर्धन तथा दु:खी है। इस परिवार के बच्चों कि न तो मानसिक स्थिति अच्छी थी न शारीरिक। गरीबी ने उनके शरीर तथा मस्तिष्क का पूर्ण विकास होने ही नहीं दिया था।

बचपन

प्रेमचन्द का बचपन काफी कष्टों में बीता था। प्रेमचन्द की माता आनन्दीदेवी की मृत्यु सन् 1887 में हुई थी। उस समय प्रेमचन्दजी की उम्र केवल सात साल की थी। सभी माताओं की भॉति, उनके लिए भी उनकी माता ममत्व एवं प्रेम की देवी थी, जो उनको छोड़कर चली गई। "उनकी समस्त कृतियों में हमे मातृ-प्रेम की कोमल, श्रद्धापूर्ण और स्नेहसिक्त हल्की छाप मिलती है। वे अत्यन्त स्नेहशील और उच्च भावना युक्त महिला थीं। वे स्नेहमयी थीं परन्तु अवसर पड़ने पर दृढ़ भी थी। प्रेमचन्द की नारी सम्बन्धी धारणा में उनकी माता के सेवामय और त्यागशील जीवन ने उन्हें अत्यधिक प्रभावित किया है। एक बालक जो अपनी मॉ को लगभग पागलपन की सीमा तक प्यार करता है, उसे मॉ की मृत्यु के पश्चात प्राय: अपने आनन्द की समाप्ति ही दिखाई देती है।'' 6

जैसा कि हम सब जानतें हैं कि बच्चे बहुत कोमल होते हैं और वे स्मरण क्षमता में आगे होते हैं। प्रेमचन्द भी उनमें से एक थे। बचपन में उनकी विमाता उन्हें लेखन संबंधित आवश्यक वस्तुएं भी नही लाती थीं और तो और खाने-पीने में भी उनके साथ समान व्यवहार नही करती थी। ये सारी बातें उनके दिलो दिमाग में घर कर गई थी। सारी घटनाएं पूरी उम्र तक उनको याद रही। ये सब चर्चाएँ उन्होंने अपनी दूसरी पत्नी से भी किया थी।

जिस तरह छोटे बच्चे खिलौने से, गुड़िया से खेलते थे उसी तरह प्रेमचन्द को यह सब चीजों से खेलने का अवसर नही मिला था। उनको गिल्ली डण्डे का शौख था लेकिन वह भी ज्यादा दिनों तक टिक नही सका। उन्हें गन्ना चूसने और मुँह भरकर मटर की फलियाँ खाने का बहुत चाव था। डाकिए को आता देखकर बालक धनपत को बड़ा आनन्द मिलता था।

शिक्षा

अगर हम शिक्षा की बात करें तो प्राचीन परिपाटी के अनुसार प्रेमचन्द भी अपने गांव गोरखपुर के रावत पाठशाला में भेजे गये थे। "जिसे सुनारी पेशे वाले एक मौलवी साहब गाँव की एक मस्जिद में चलाते थे।'' 7 इसी स्कूल में ही इन्हीं मौलवी के पास से उन्होंने उर्दू और फारसी सीखी थी। विमाता के आने के बाद चूँकि उनका रिश्ता इतना अच्छा न था इसलिए वह गोरखपुर की रावत पाठशाला में अंग्रेजी पढ़ने चले गये और उसी पाठशाला में आठवीं तक रहे, आज जो तीसरा दर्जा कहलाता है।

उनके स्कूल और कॉलेज का जीवन भी बाधाओं से भरा पड़ा है। पैसे की तो पहले से ही तंगी थी, क्योंकि पिताजी की तन्ख्वाह कम थी और खाने वाले ज्यादा थे। उनको पढ़ाई के लिए भी पैसे कम पड़ते थे। वे लिखते हैं कि-" पैसों की दिक्कत तो मुझे हमेशा रहती थी। बारह आने महीना फीस लगती थी। उन बारह आने में से एक-आध आना हर महीने खा जाता था, जिस स्कूल में मैं था, उसमें छोटी जाति के लोग थे। वे लोग मुझसे लेकर दो चार पैसे खा लेते थे। इसलिए फीस देने में बड़ी दिक्कत होती थी।''8

माँ के देहान्त होने पर अजायबलाल ने दूसरा विवाह किया। दूसरी माँ का स्वभाव प्रेमचन्द के लिए ठीक न था, प्रेमचन्द जब विमाता से फीस के पैसे माँगते थे तो वह उन पर बुरी तरह से चिल्ला पड़ती थीं। पिताजी को तो वे कुछ नही कह सकती थी इसलिए वह प्रेमचन्दजी को कटु वचन कहती थी। जो उन्हें उनकी माँ की याद दिला देता था। माँ की याद उन्हें हमेशा सताती थी, माँ के स्नेह से वे वंचित रहे। पिताजी थे, तब तक तो पढ़ाई किसी भी तरह चल रही थी। पढ़ाई में वे हमेशा ही प्रथम श्रेणी प्राप्त करते थे। "13 वर्ष की अवस्था में वे बनारस के मिशन हाईस्कूल की छठवीं कक्षा में भर्ती हुए।''9

जब प्रेमचन्द नवीं कक्षा में आये तब पिता मुंशी अजायबलाल का तबादला जमनिया (जिला-गाजीपुर) में हो गया। अब प्रेमचन्द को नवमी कक्षा में पढ़ाना बनारस में ही संभव था। प्रेमचन्द पिता के पास से पॉंच रूपये लेकर बनारस की क्वीन्स कॉलेज में दाखला लिया। लेकिन पॉंच रूपये से क्या हो सकता है ? प्रेमचन्द स्वयं इसका वर्णन करते हुए लिखते हैं--" पांव में जूते न थे। देह पर साबित कपड़े न थे। मंहगाई अलग, 10 सेर के जौ थे। स्कूल से साढ़े तीन बजे छुट्टी मिलती थी। काशी के क्वींस कॉलेज में पढ़ता था। हेडमास्टर ने फीस माफ कर लड़के को पढ़ाने जाता था। जाड़े के दिन थे। चार बजे पहुॅंचता था। पढ़ाकर छह बजे छुट्टी पाता। वहॉं से मेरा घर देहात में पॉंच मील पर था। तेज चलने पर भी आठ बजे से पहले घर न पहुॅंच सकता था और प्रात:काल आठ बजे फिर घर से चलना पड़ता था, सही वक्त पर स्कूल न पहुॅंचता। रात को भोजन करके कुप्पी के सामने पढ़ने बैठता और न जाने कब सो जाता। फिर भी हिम्मत बॉंधे हुए था।'' 10

1898-99 में उन्होंने मैट्रीक्युलेशन परीक्षा उत्तीर्ण की। लेकिन बाद में 1897 में उनके पिताजी की मृत्यु होने के पश्चात उनको समय-समय पर अपनी कॉलेज की शिक्षा छोड़कर अपनी परिक्षाऍं प्राइवेट रूप से देनी पड़ी। उनकी अधिकांश शिक्षा उन्होंने घर पर ही प्राप्त की।

प्रेमचन्द को अपने अतिरिक्त परिवार का भरण- पोषण करना था, इसलिए वह नौकरी के साथ-साथ अपनी पढ़ाई भी करते थे। "1904 में हिन्दी और उर्दू दोनों में विशेष योग्यता सहित उन्होंने जूनियर टीचर्स सर्टीफिकेट प्राप्त किया। 1914 में उन्होंने प्राठवेट रूप से इण्टरमीडियट परीक्षा पास की और 1919 में 39 वर्ष की आयु में उन्होंने बी. ए. की उपाधि ली। उनका अध्ययन विषयक प्रेम अत्यन्त असाधारण था। यह सत्य है कि प्रेमचन्द की वास्तविक शिक्षा जीवन की पाठशाला में हुई। जिसमें उन्होंने जीवन की पुस्तक पढ़ी, परन्तु साथ ही यह भी उतना ही सच है कि प्रेमचन्द सामान्य शिक्षा में भी पीछे नही रहे। जीवन की पुस्तक एवं पाठ्य पुस्तकों दोनों ही का उनका अत्यन्त गहरा अध्ययन था।'' 11

इस तरह उनकी शिक्षा पूर्ण हुई। वे आगे पढ़ना चाहते थे लेकिन आर्थिक रूप से कमजोर होने के कारण एवं पारिवारिक जिम्मेदारियों की वजह से उनको अपनी पढ़ाई छोड़नी पड़ी।

पारिवारिक जीवन :--

हम बाल्यावस्था से प्रौढ़ावस्था तक के जीवन काल की चर्चा ज्यादा विस्तार से कर सकते है। उनका जीवन कष्टों और अभावो में गुजारा है। वह एक बहुत ही पिछड़े परिवार में पैदा हुए थे। उनके पिता अजायबलाल के साथ उनके तीन भाई कमलेश्वर, महावीर प्रसाद और उदितनारायण लाल थे। वे तीनों भी अजायबलाल की तरह मामूली नौकरी करते थे, जिससे परिवार का भरण-भोषण नहीं हो पा रहा था। उस

परिवार के पुरुष प्रगति तथा उन्नति के लिए पूर्ण उदासीन थे तथा स्त्रियाँ घर में अन्दर ही अन्दर आपस में लड़ती रहती थी। घर का वातावरण इतना कलुसित हो गया था कि उसे सहना असंभव प्रतीत होता था। मुंशी अजायबलाल का विवाह आन्नदी देवी के साथ हुआ उन्हे एक पुत्र हुआ जिसका नाम धनपतराय रखा गया। सात वर्ष की अल्प आयु में ही आन्नदी देवी का देहान्त हो गया। माँ की मृत्यु के दो वर्ष पश्चात् पिताजी ने दूसरा विवाह कर लिया। नयी माँ उनको कटु वचन कहती, उन्हें माँ के प्यार से वच्चित रखती। प्रेमचन्द को विमाता के कठोर व्यवहार के प्रहार को सहना पड़ता था। उन्हें अब माँ के वगैर अच्छा नहीं लगता। प्रेमचन्द जी को विमाता के दुर्व्यवहार एवं माँ की कमी के बीच अपना जीवन बिताना पड़ रहा था, जिसके परिणाम स्वरूप उन्हें अपनी माँ आन्नदी देवी की याद सताने लगी। जिन्दगी भर वे ममत्व प्रेम के लिए तरसते थे। इसलिए उनकी समस्त कृतियों में हमें कहीं न कहीं मातृ प्रेम, नारी संबंधी उनकी धारणाएं अवश्य देखने को मिलती है। इसलिए डॉ. जगतनारायण हैकरवाल कहते हैं कि "एक बालक जो अपनी माँ को लगभग पागलपन की सीमा तक प्यार करता है, उसे माँ की मृत्यु के पश्चात् प्राय: अपने आन्नद की समाप्ति ही दिखाई देती है। यदि उसे कटु विमाता के दुर्व्यहार पर छोड़ दिया जाता है, तो उसे अपनी माता का अभाव और अधिक तीव्रता से खलता है।'' 12

माँ का प्रेम न पाने की वजह से वह बालक विमाता के कहर से बचने के लिए खेत-खलिहानों में घूमता रहता था। वहीं उन्हें ग्रामीण जीवन तथा प्रकृति का सत्संग प्राप्त हुआ। उन्हें इस अति विशाल संसार सागर की रंगीनियों की तुलना करके सही और गलत की बात को समझने के लिए अकेला छोड़ दिया गया था। जब बात उनकी शिक्षा की आई तो " ऐसा बहुत से अवसरों पर हुआ कि धनपतराय को उनकी विमाता ने दैनिक लेखन के लिए आवश्यक वस्तुएं भी देने से इन्कार कर दिया। उनकी पत्नी ने 'प्रेमचन्द घर में' नामक अपनी पुस्तक में लिखा है कि उनकी माता भोजन के साथ उन्हें घी नही देती थीं।'' 13

पन्द्रह वर्ष की अवस्था में प्रेमचन्द का विवाह एक कुरुप और कर्कश स्त्री से हुआ। पिताजी के जोर देने पर उन्होंने यह शादी कर डाली पर वह बहुत दिनों तक न निभ पाई क्योकि उनकी पहली पत्नी अत्यंत झगड़ालू थी। इस घटना का वर्णन करते हुए प्रेमचन्द ने अपने मित्र मुंशी दयानारायण को लिखा है कि--" बिरादरम् में अपनी बात किससे कहूँ। जब्त किए-किए कोफ़त हो रही है --- औरतों ने एक दूसरें को जली कटी सुनाई। ---- बीबी साहबा ने अब जिद पकड़ी कि मैं यहाँ न रहूँगी मैके जाऊँगी। ---- मैं उनसे पहले ही खुश न था, अब तो सूरत से बेजार हूँ। गालिबन् अबकी जुदाई दायगी साबित हो। खुदा करे ऐसा ही हो। मैं बिना बीबी के रहूँगा।'' 14

कम उम्र में ही उनको अपनी पढ़ाई त्याग कर परिवार का भरण-पोषण का दायित्व संभालना पड़ा, क्योंकि 1897 मुंशी अजायबलाल का देहान्त हो गया। पिता की मृत्यु के दो वर्ष बाद ही उन्होंने सन् 1899 में चूनार के एक स्कूल में नौकरी करना प्रारम्भ किया और सन् 1900 तक वह सरकारी नौकरी में लग गये। उनको नौकरी से सिर्फ 18 रूपये मासिक वेतन मिल पाता था, जिससे वे अपने परिवार का भरण-पोषण नहीं कर पा रहे थे। वह बहराइच के सरकारी स्कूल में अध्यापक नियुक्त हुए। 21 सितम्बर से उन्होने प्रतापगढ़ में फर्स्ट एडीशनल मास्टर का कार्य संभाला।

जैसा कि हम सब जानतें हैं कि बच्चे बहुत कोमल होते हैं और वे स्मरण क्षमता में आगे होते हैं। प्रेमचन्द भी उनमें से एक थे। बचपन में उनकी विमाता उन्हें लेखन संबंधित आवश्यक वस्तुएं भी नहीं देती थीं और तो और खाने-पीने में भी उनके साथ समान व्यवहार नही करती थी। ये सारी बातें उनके दिलो दिमाग में घर कर गई थी। सारी घटनाएँ पूरी उम्र तक उनको याद रही। ये सब चर्चाएँ उन्होंने अपनी दूसरी पत्नी से भी किया थी।

" सन् 1906 में प्रेमचन्द ने दूसरा विवाह किया। यह विवाह उनके लिए एक वरदान सिद्ध हुआ। मुशी प्रेमचन्द लिखते हैं--" मेरी प्रथम पत्नी की मृत्यु 1904 में हुई। उनके मरने पर मैंने एक बाल विधवा से विवाह किया और मैं उसके साथ बहुत प्रसन्न हूँ। उसने कुछ, साहित्यक रुचि जागृत कर ली है और कभी-कभी कहानियाँ भी लिखती है। वह एक निर्भय, साहसी, दृढ़ और निष्कपट, ईमानदार तथा अपने दोषों को स्वीकार करने वाली अत्यधिक शालीन स्त्री है। उसने असहयोग आन्दोलन में भाग लिया और जेल गई हैं। मैं उसके साथ प्रसन्न हूँ और उससे उस वस्तु की अपेक्षा नहीं रखता जो वह दे नहीं सकती। वास्तव में उनकी पत्नी शिवरानी देवी उनके लिए एक बहुत बड़ी शक्ति थीं। वे एक अत्यन्त कुशल एवं दक्ष गृहस्वामिनी थीं। उन्होंने प्रेमचन्द को लिखने की प्रेरणा दी। यह बता देना भी अनुचित न होगा कि प्रेमचन्द ने उनसे कैसे विवाह किया। प्रेमचन्द की यह दृढ़ धारणा थी कि एक विधुर व्यक्ति को विधवा से ही विवाह करना चाहिए। अतएव उन्होंने स्वयं ही मुंशी देवीप्रसाद को उनकी विधवा कन्या से विवाह के लिए पत्र लिखा।'' 15 उस जमाने में ये एक साहस पूर्ण कार्य था क्योंकि उस जमाने में एक विधुर फिर से शादी कर सकता था लेकिन एक विधवा दूसरी शादी नहीं कर सकती थी। विधवा दूसरी शादी करे यह समाज को बिल्कुल पसन्द नहीं था। फिर भी समाज का सामना करते हुए प्रेमचन्द ने शिवरानी देवी से विवाह किया। यह विवाह उनके लिए भगवान का आशीर्वाद बना। वे शिवरानी देवी में अपनी हिम्म्त देखते थे और शिवरानी देवी उनको आगे पढ़ने'लिखने की प्रेरणा देती थी। शिवरानी देवी से उन्हें एक पुत्री कमला

देवी अगस्त-सितम्बर 1913 में पैदा हुई। दो पुत्र, जिसमें बड़ा पुत्र श्रीपतराय (घुन्नू) का जन्म 18 अगस्त 1916 में हुआ और छोटे पुत्र अमृतराय का जन्म 11-15 सितम्बर 1919 को हुआ था।

प्रेमचंद के परिवार का चित्र

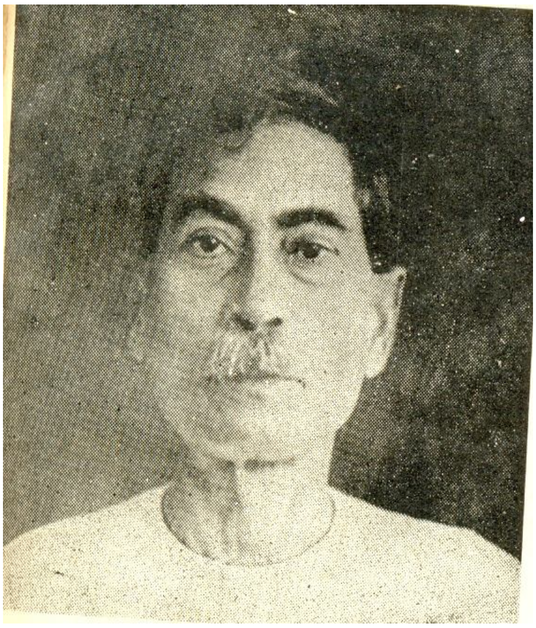

प्रेमचन्द

शिवरानी देवी

श्रीपतराय (घुन्नू)
बड़ा पुत्र 18अगस्त 1916

कमलदेवी (बड़ी लड़की)
अगस्त-सितम्बर-1913

अमृतराय (बन्नू) छोटा पुत्र
11-15 सितम्बर, 1919

प्रेमचन्द के परिवार में पैसे की कमी तो रहती थी लेकिन किसी से अनबन न थी, परिवार में सभी मिल-जुलकर रहते थे और सभी कठिनाइयों का सामना करते थे। सन् 1912 में प्रेमचन्द हमीरपुर जिले में शिक्षा विभाग के सब डिप्टी इन्सपेक्टर के पद पर नियुक्त हुए। सरकारी नौकरी का सिलसिला 1921 तक चलता रहा लेकिन उन्होंने गांधीजी के असहयोग आन्दोलन से प्रभावित होकर नौकरी से इस्तीफा दे दिया। जब उन्होने नौकरी से इस्तीफा दिया तब उनकी मासिक आय 125 रूपये प्रति मास थी। उन्होंने अपनी पेंशन के अधिकार को भी गंवा दिया। मूलरूप से सरकारी नौकरी के ये बीस वर्ष प्रेमचन्द के लेखन कार्य में बाधक बन रहे थे। वे अपनी नौकरी की वजह से लेखन कार्य को ज्यादा समय नहीं दे पा रहे थे। लेकिन नौकरी छोड़ने के बाद प्रेमचन्द ने साहित्य क्षेत्र में आगे बढ़कर उसमें अपना योगदान देने का निश्चय किया। उन्होंने तय किया कि अब मैं तन-मन-धन से साहित्य की सेवा करूँगा और उन्होंने अपना लक्ष्य प्राप्त भी किया।

प्रेमचन्द ने अपने जीवन के हर एक मोड़ पर कई कसौटियों का सामना किया था। लेकिन वह कभी भी उन कसौटियों से पीछे नहीं हटे। उन्होंने उन परिस्थितयों से भी समझौता नहीं किया जिनकी वजह से वे साहित्यक सेवा में पूरी तरह ईमानदार न रह पाते। साहित्य में आगे बढ़ने के लिए उन्होंने सरकारी नौकरी को भी त्यागपत्र दे दिया। वे फिल्मी दूनिया में भी गये लेकिन वहॉ भी उन्हें खोखलापन मिला। इसलिए वह वहॉ से भी वापस लौट आए। अलवर के महाराज प्रेमचन्द से काफी खुश थे। उनकी रचनाएं अधिक पसंद थी इसलिए उन्होंने प्रेमचन्द को अपने यहॉ एक पद पर रखना चाहा। वे उनको 400 रूपये, मोटर, बंगला देने वाले थे लेकिन प्रेमचन्द ने उसमें असमर्थता प्रकट की। ये प्रलोभन भी उनको उनके लक्ष्य एवं पथ से

विचलित न कर सका। उनके लिए उनका साहित्यक जीवन ही अत्यंत प्रिय एवं संतुष्ट लगता था। जब संयुक्त प्रान्त के गवर्नर ने प्रेमचन्द को ' राय साहब ' की पदवी देने की इच्छा प्रकट की तो प्रेमचन्द का दो टूक जबाब था--" यदि जनता मुझे राय साहब की पदवी दे तो मुझे सहर्ष स्वीकार है, परन्तु सरकार द्वारा दी गई पदवी की मुझे तनिक भी इच्छा नहीं है।'' 16 प्रेमचन्द के कुछ मित्र उनको काउंसिल के चुनाव में खड़ा करना चाहते थे, पर प्रेमचन्द ने कहा कि मेरा काम काउंसिल के चुनाव में जाने का नहीं, बल्कि वहॉ जाने वालों की समालोचना करने का है।

जीवन के अन्तिम दिनों में प्रेमचन्द 'जलोदर' से पीड़ित रहे। उन्हें लगातार खून के दस्त आते थे। इसी से जुड़ा एक प्रसंग 25 जुलाई 1936 का इस प्रकार है, जहॉ प्रेमचन्द और उनकी पत्नी के बीच मे एक वार्तालाप हो रहा है, वह प्रसंग इस प्रकार है--

25 जुलाई :-- रात को ढाई बजे प्रेमचन्द को पहले के समान खून की कै हुई। इसका वर्णन करते हुए शिवरानी देवी ने लिखा है--" उन्हें नींद लाने के लिए, पैर के तलवे और सिर की मालिश करती थी। मैं रात को एक बजे उनका सिर सहला रही थी कि किसी तरह उन्हें नींद आ जाए।

मुझसे वे बोले ' अब तुम सो जाओ। कब तक बैठी रहोगी ?'

मैं बोली ' मैं तो आपकी फिक्र में हूँ और आप मेरी।'

आप बोले ' तुम सो जाओगी तो मैं भी सो जाऊँगा।'

मैं उसी कमरे के एक तख्त पर लेट गई। आप धीरे से उठे। पाखाने जाने लगे। पाखाने में बैठते ही आपको फिर कै आ गयी। मैं आवाज सुनकर दौड़ी गयी थी उस समय इतनी शिथिलता उनमें आ गई थी कि वे उठ-बैठ भी नहीं पा रहे थे। फिर दुबारा कै का खून हम दोनों पर तैर गया। उसके बाद पानी मॅगाकर मैने उससे उनका मुॅह धोया। कुल्ला करवाकर उन्हें चारपाई के पास कर दिया। कुछ देर बाद तबियत कुछ संभली।

उस समय तक तीनों बच्चे भी जाग गये थे। मैं घुन्नू से बोली, ' जाकर डाक्टर को बुला लाओ। 'आप बोले -' लड़के को इस वक्त मत परेशान करो, दवात और कागज लाओ।' जल्दी-जल्दी कह गये। अब मैं नहीं बचने का। कम से कम कागज तो दो।'

मैं बोली 'होगा क्या ?'

' तुमको बैठने का ठिकाना करता जाऊॅ।'

मैं बोली, ' घबराइए नहीं। आप अच्छे हो जांएगे।'

बोले, उठो, लाओ।'

मैं बोली, 'अंदर चलिए। वे मेरे मुँह की तरफ देखकर रो पड़े। मेरी भी आँखों से आँसू बह चले। मैं आँसुओं को छिपाना जरूर चाहती थी, पर मजबूरी भी कोई चीज है। फिर मैं साहस भरकर अपने सहारे उन्हें अंदर ले गई। चारपाई पर जब उन्हें लिटा दिया तब फिर वे बेहोश से हो गये।''17

31 अगस्त:-- शिवरानी देवी ने बिमारी के दौरान के एक प्रसंग को चित्रित करते हुए कहा है कि--" मेरे स्वामी के पेट में बहुत दर्द था, मैं उनके सिरहाने बैठी हुई थी, जब दर्द कुछ कम हुआ तो बोले, रानी मुझे तुम्हारी और बन्नू की बड़ी चिन्ता है। धन्नू तो हाथ पैर वाला है, बेटी की शादी हो गयी है, वह सुखी है। परन्तु तुम्हारी और बन्नू की क्या दशा होगी ?' उस समय मेरे संयम, धैर्य, और विश्वास के बाँध टूट गये, जीवन में पहली बार मैं रो पड़ी। परन्तु मैंने आँसुओं को छिपा लिया। वे बोलते रहे, रानी, मैं भी तुम्हें छोड़कर जाना नहीं चाहता। यहाँ मैं सब कष्ट सहने को तैयार हूँ, परन्तु इसके आगे मेरा बस ही क्या है? इसके बाद----। फिर वे कहने लगे-' रानी तुम अगले जनम में मेरी मां थी और इस जनम में देवी हो। मैंनें उनका मुँह बन्द कर दिया। 18

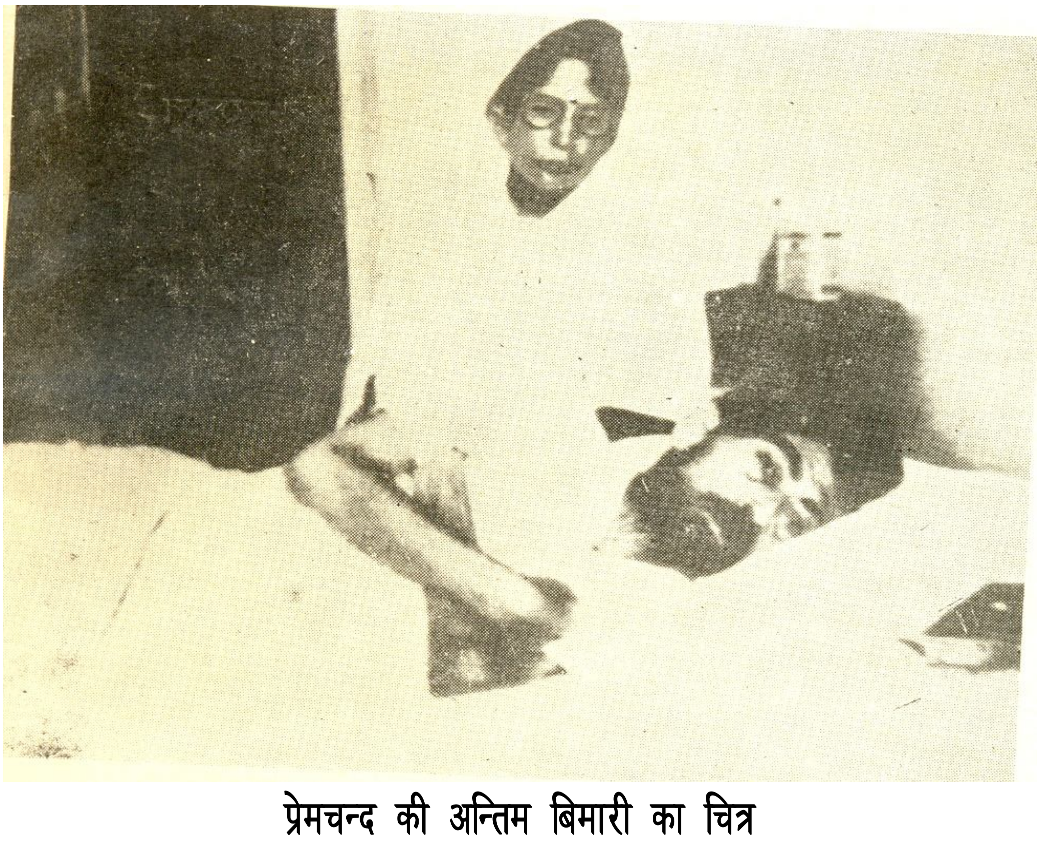

प्रेमचन्द की अन्तिम बिमारी का चित्र

8 अक्टूबर:-- बृहस्पतिवार रात्रि के 12 बजे जैनेन्द्र कुमार प्रेमचन्द के पास बैठे थे और सुबह तक बैठे रहे। रात को प्रेमचन्द को पेट में बहुत दर्द हो रहा था, उनको तकलीफ ज्यादा थी लेकिन कराह नहीं रहे थे। उन्हें नींद नहीं आ रही थी। प्रात: 7 बजे मुँह धुलाने के लिए शिवरानी देवी आयी। वे उनके लिए दांत मॉजने को पावडर तथा कुल्ला करने के लिए पानी लेकर आयी, लेकिन प्रेमचन्द की ऑखों के सामने ॲधेरा छाने लगा, पैरों तले जमीन खिसकने लगी। शिवरानी देवी घबड़ा गई। वहॉ तो उल्टी सॉस चल रही थी। प्रेमचन्द बेबस ऑखों से शिवरानी देवी को देखते रहे और भारी गूॅजती आवाज में डूबते आदमी की तरह पुकारा रानी---' शिवरानी देवी लपकी, जैनेन्द्र उनकी हालत देखकर डाक्टर को बुलाने गये लेकिन जब वे प्रात: 10 बजे वापस आये तब दो-तीन घण्टे की निरन्तर मूर्छा के बाद प्रेमचन्द ने मृत्यु को ग्रहण कर लिया था। प्रात: 11-12 बजे सारे शहर तथा लमही गॉव में ये संदेश फैल गया था कि प्रेमचन्द जी अब नहीं रहे। उनके सारे मित्र तथा परिवारजन, साहित्यिक लोग वहॉ पहुॅच गये। शिवरानी देवी उनके मूर्छित शरीर को गोद में चिपटाए आकाश को भी दहला दे ऐसा करुण क्रन्दन कर रही थी। सब की ॲाखों में ॲासू थे। यहॉ एक बडे साहित्यकार का अंत हुआ था। जो हमेशा साहित्यिक दुनिया में खलने वाला था। यहॉ एक प्रसंग बड़ा ही करुण था जिसने जयशंकर प्रसाद को भी रुला दिया था वह है

"भाभी शिवरानी शव को किसी को छूने नहीं दे रही थीं। सबने प्रसाद जी से कहा, 'आप ही समझाये'

वे आगे बढ़े। भाभी से बोले, अब उन्हें जाने दीजिए।

वे क्रोधपूर्वक चीख उठी, आप कवि हो सकते हैं, पर स्त्री का हृदय नहीं जान सकते। मैंने इनके लिए अपना वैधव्य जीवन खण्डित किया था। इनसे इसलिए शादी नहीं की थी कि मुझे दुबारा विधवा बनाकर चले जाएं। आप हट जाइए।

प्रसादजी के कोमल हृदय को वेदना तथा नारी की पीड़ा ने जैसे दबोच लिया। उनका गला भर आया। नेत्रों में आंसू छलछला उठे। मैं ही सामने खड़ा दिखाई पड़ा। मुझसे भर्रायी आवाज में बोले, परिपूर्णा, तुम्हीं सम्भालों।

भाभी चिल्लाती चीखती रहीं और मैंने कहा यह प्रेमचंद जी नहीं है मिट्‌टी है। कहकर मुर्दा उनकी गोद से छीन लिया।

अर्थी बनी। बारह बजे लगभग बिरादरी वाले और कुछ साहित्यिक मित्र अर्थी उठाकर मणिकर्णिका घाट की ओर चले।'' 19

प्रेमचन्द जी की अन्तिम यात्रा की तैयारी

इस तरह प्रेमचन्दजी ने 56 साल की उम्र में इस संसार को त्याग दिया। इतनी कम उम्र में उन्होंने इतने महान साहित्यक काम किये कि उनके नाम को लेकर एक युग का नाम रख दिया गया। वह युग था 'प्रेमचन्द युग'। उनकी मृत्यु के बाद ही उनके इस युग का अन्त हुआ। इस तरह एक समाज सुधारक एवं लोगों को सच्चाई दिखाने वाला, सही राह दिखाने वाला दीया हमेशा के लिए बुझ गया।

2 - प्रेमचन्द का कृतित्व

हमने देखा कि उनका बचपन कोई खास अच्छा नहीं बीता। माता की मृत्यु के बाद घर में कलह और बढ़ गया। विमाता के आने के बाद तो उनका जीवन नर्क सा बन गया था। माँ का प्रेम, स्नेह तो उन्हें नसीब ही नहीं हुआ। दरिद्रता और गृह कलह से ऊब कर उन्होंने साहित्य की शरण ली। पढ़ने-लिखने का शौख तो बचपन से ही उनको था। प्रेमचन्द इसकी चर्चा करते हुए लिखते है-" उस वक्त मेरी उम्र कोई 13 साल की रही होगी। हिन्दी बिल्कुल न जानता था। उर्दू के उपन्यास पढ़ने का उन्माद था। मौलाना शाह पण्ड़ित रतननाथ सरशार, मिर्जा रुसवा, मौलवी मुहम्मद अली (हरदोई निवासी) उस वक्त के सर्वप्रिय उपन्यासकार थे। इनकी रचनाएं जहां मिल जातीं, स्कूल की याद भूल जाती थी और पुस्तक समाप्त करके ही दम लेता था। उस जमाने में रेनॉल्ड़ के उपन्यासों की धूम थी। उर्दू में उनके अनुवाद धड़ाधड़ निकल रहे थे और हाथों हाथ बिकते थे। मैं भी उनका आशिक था। स्व. हजरत नियाज ने, जो उर्दू के प्रसिद्ध कवि हैं और जिनका हाल में ही देहान्त हुआ है। रेनाल की एक रचना का अनुवाद ' हरमसरा' के नाम से किया था। उस जमाने में लखनऊ के साप्ताहिक ' अवध पंच ' के सम्पादक स्व. 'मौलाना सज्जाद हुसेन ने', जो हास्य रस के अमर कलाकार है, रेनाल्ड के दूसरे उपन्यास का अनुवाद - ' धोखा था तिलस्मी फानूस' के नाम से किया था। ये सारी पुस्तकें मैंने उसी जमाने में पढ़ी थी और पं. रतननाथ सरशार से तो तृप्ति ही न होती थी। उनकी सारी रचनाएं मैंने पढ़ डालीं। उन दिनों मेरे पिताजी गोरखपुर में रहते थे और मैं भी गोरखपुर के ही मिशन स्कूल में आठवें में पढ़ता था, जो तीसरा दर्जा कहलाता था। रेती पर एक बुकसेलर बुद्धिमान नाम का रहता था। मैं उसकी दुकान पर जा बैठता था और उसके स्टोर से उपन्यास ले लेकर पढ़ता था, मगर दुकान पर सारे दिन बैठ न सकता था। इसलिए मैं उसकी दुकान से अंग्रेजी की पुस्तकें, कुंजिया एवं नोट्स लेकर अपने स्कूल के बच्चों को बेचा करता था और उसके मुआबजे में मैंने सैकड़ों ही उपन्यास पढ़ डाले होंगे। जब उपन्यासों का स्टाक समाप्त हो जाता तो मैंने नवलकिशोर प्रेस से निकले हुए पुराणों के उर्दू अनुवाद भी पढ़े और 'तिलस्मी होशरुबा' के कई भाग पढ़े। इस बृहत तिलस्मी ग्रन्थ के 17 भाग उस वक्त निकल चुके थे और एक-एक भाग सुपर रायल आकार के दो-दो हजार पृष्ठों से कम न होगा और इन 17 भागों के उपरान्त उसी पुस्तक के अलग-अलग प्रसंगों पर पच्चीसों भाग छप चुके थे। इनमें से भी मैंने कई पढ़े।''20

इससे हमें पता चलता है कि प्रेमचन्द को बचपन से ही पढ़ने-लिखने का काफी शौक था। उनका पठन-पाठन 13 वर्ष की ही उम्र में इतना अधिक था कि साधारण बालक इतनी कम उम्र में खेलने कूदने

के अलावा पढ़ने के बारे में सोच भी नहीं सकता है। प्रेमचन्द जी को काफी छोटी उम्र में ही उर्दू तथा हिन्दी का काफी गहरा ज्ञान था।

प्रेमचन्द जी ने अपना साहित्यक जीवन 20 वीं शताब्दी में शुरू किया। प्रेमचन्द ने अपने साहित्य जीवन में अनेक रचनाएं प्रस्तुत की। उन्होंने अपने 35 वर्ष के साहित्यक जीवन में समाज, जीवन, तथा व्यक्ति के हर एक अंगों को बखूबी चित्रित किया है। उनकी रचनाएं सत्य पर आधारित थी। वे जो देखते थे और जो महसूस करते थे उसी को अपनी रचनाओं में स्थान देते थे तथा अपनी रचनाओं के द्वारा उस तथ्य को समाज के सामने इस तरह पेश करते की समाज की ऑखे खुल जाती। और समाज को सत्य का ज्ञान हो जाता। प्रेमचन्द की रचनाओं को अगर सही तरह से जानना हो तो हमें उनके रचनाक्रम की तिथियों का अवलोकन करना पड़ेगा, तभी हम वैज्ञानिक ढंग से उनकी कृतियों का अध्ययन कर सकेंगें।

" प्रेमचन्द का साहित्यक जीवन 1901 से प्रारम्भ हुआ। 17 जुलाई 1926 को दयानारायण निगम को लिखे अपने पत्र में वह स्वीकार करतें हैं--'सन् 1901 से लिटरेरी ज़िन्दगी शुरू की। रिसाला 'जमाना' में लिखता रहा। कई साल तक मुतफर्रिक मज़ामीन लिखे। 1904 में एक हिन्दी नाविल 'प्रेमा' लिखकर इन्डियन प्रेस से शाया कराया।' 14 वर्ष की अवस्था में ही उन्होंने "होनहार विरवान के होत चीकने पात'' नामक एक नाटक लिखा। श्री मदन गोपाल के मतानुसार 19 वर्ष की अवस्था में इन्होंने अपना प्रथम उपन्यास 'प्रतापचन्द' लिखा था, लेकिन वे फिर कहते हैं कि यह उपन्यास 1901 में लिखा गया पर प्रकाशित नहीं हो सका । प्रेमचन्द का प्रथम प्रकाशित उपन्यास 'असरारे मआविद' था, जो 8 अक्टूबर 1903 से 1 फरवरी 1905 तक बनारस के एक उर्दू साप्ताहिक ' आवाज ए-खल्क' में धारावाहिक रूप में प्रकाशित हुआ। श्री दयानारायण निगम के अनुसार 'हम खुर्मा व हम सबाब' प्रेमचन्द का प्रथम उपन्यस था। मुंशी प्यारेलाल शकीर का भी विश्वास था कि 'हम खुर्मा व हम सबाब' प्रेमचन्द का प्रथम उर्दू उपन्यास था। अमृतराय भी इस संभावना को अस्वीकार करते हैं कि ' हम खुर्मा व हम सबाब' 1900 के आस पास लिखा गया हो। पर वे भी इसके प्रकाशन काल को सन् 1906 ही मानते हैं। इन सभी प्रमाणों के आधार पर 'हम खुर्मा व हम सबाब' को ही प्रेमचन्द का प्रथम उर्दू उपन्यास मान सकते हैं। यह उपन्यास सन् 1906 में हिन्दुस्तानी प्रेस लखनऊ में छपा और इसके प्रकाशक बाबू महादेव प्रसाद वर्मा (पुस्तक विक्रेता, अमीनाबाद, लखनऊ) थे। प्रेमचन्द का प्रथम हिन्दी उपन्यास 'प्रेमा' था। '' 21

हमने देखा कि उन्होंने अपने 36 वर्ष के साहित्यक जीवन में एक दर्जन उपन्यास और 300 कहानियॉ लिखी। इन कृतियों को पढ़ने पर हमे देहात के ग्रामीण, सामाजिक, राजनैतिक, सांसरिक तथा भौतिक और आध्यात्मिक जीवन का और हमारे देश की यथार्थ दशा एवं स्थिति का ज्ञान होगा। यह भी हमे मालूम होगा

कि उस समय हमारा देश ब्रिटिश सरकार से अपनी भारतमाता को छुड़ाने के लिए, उसे स्वतंत्रता दिलाने के लिए किस तरह क्षण-क्षण आगे बढ़ रहा था। स्वतंत्रता के लिए जो आन्दोलन चल रहे थे, उसमें आर्थिक लूट- खसोट से तंग आकर इस आन्दोलन में खिंचते चले आ रहे थे। हम यह बिना किसी संदेह से कह सकते हैं कि प्रेमचन्द वह पहले रचनाकार हैं कि जिन्होंने इस उद्देश्य से अपनी रचनाएं की, कि जिसे पढ़कर देश की जनता गुलामी, जुल्म से नफरत करना सीखे और ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध अपनी लड़ाई को और तेज करना सीखे। इन्होंने सिर्फ देश की आजादी को प्राप्त करने के लिए ही साहित्य नहीं लिखा बल्कि ऐसी भी रचनाएं की, कि जिसमें हमारे देश के समाज में चल रहे कुरीति-रिवाज, अन्ध विश्वास, रूढ़िवाद, दम्भ और शोषण को चित्रित किया है। वे उन सभी चीजों से नफरत करते थे, जिससे समाज का किसी न किसी रूप में नुकसान होता है। इनके द्वारा समाज में हो रहे अन्याय को वह देख नहीं सकते थे। इसलिए उन्होंने अपनी रचनाओं में इन सब पर प्रकाश डाला। वे दंभ और शोषण से घृणा करते थे। हम देखते हैं कि उनके उपन्यासों के किसान पात्र सामन्ती व्यवस्था की गुलामी और उससे उत्पन्न जीवन नरक से निकलने का प्रयत्न कर रहे हैं और मध्यम वर्ग के श्रमजीवी वर्ग और गरीब क्लर्क अपने नागरिक जीवन में निहित अन्याय रूढ़िवाद और अन्धविश्वास के विरुद्ध संघर्षशील हैं।

प्रेमचन्द सीधे-सादे, सच्चे और निरीह जन, तथा साधारण, धार्मिक विश्वास एवं रूढ़िगत विचारों का भी आदर करते हैं। क्योंकि इनसे उन्हें घोर दरिद्रता और विषमता में भी जीवित रहने का सहारा मिलता है। इसका मतलब यह नहीं कि वे धर्म के नाम पर जन साधारण की लूट-खसोट करने वाले ढोंगी दम्भी ब्राह्मणों और स्वार्थी शिक्षित वर्ग को भूल जाते हैं लेकिन उनको खूब आड़े हाथों लेते थे। वे देखते थे कि जज, वकील, प्रोफेसर, बड़े समाज सेवक, आदि किसी को भी जनता से कोई हमदर्दी नहीं है। जिसकी शिक्षा जितनी ऊँची है उसका स्वार्थ उतना ही बढ़ा हुआ है। घूसखोरी, बेईमानी, और शोषण बढ़ता जा रहा है और इस सामाजिक व्यवस्था में देश का नैतिक स्तर इस हद तक गिर गया है कि अदालतें और स्कूल कॉलेज भी जनता को ठगने की दुकाने बनी हुई हैं। इसलिए मनुष्य को मनुष्य बनाने के लिए सिर्फ उपदेश या थोड़े बहुत सुधार ही काफी नहीं है। यह एक नई राजनीतिक और सामाजिक व्यवस्था है जो आजादी प्राप्त होने के बाद ही स्थापित हो सकती है।

प्रेमचन्द हर तरह की शारीरिक और मानसिक गुलामी, मिथ्या धारणाओं और रूढ़िगत मान्यताओं के बन्धनों से घृणा करते थे और इनसे उत्पन्न हुए दु:खों, कष्टों और शोषण से जन साधारण की मुक्ति चाहते थे। उनके साहित्य के आरंभ से अंत तक यही मुख्य क्षति है। लेकिन इनसे मुक्ति प्राप्त करने के साधन की बात करे तो प्रेमचन्द आदर्शवाद को लेकर चलते थे लेकिन जैसे-जैसे उनका सामाजिक और

राजनैतिक ज्ञान बढ़ने लगा, उनके विचारों में प्रौढ़ता आने लगी और वे आदर्शवादी से यथार्थवादी बन गये। पहले वह सुधार को अपनाते थे लेकिन अब संघर्ष और क्रान्ति से सारे रोगों का निदान करने को तैयार हुए। उनके विचार में होने वाले परिवर्तन को जानने के लिए हमें उनके साहित्य पर भरपूर दृष्टि डालनी होगी। तभी हम देश में बदलती हुई उस वक्त की सामाजिक और राजनैतिक विचारधारा को सही रूप में समझ पाएंगें। देश की यथार्थ और वास्तविक स्थिति को समझा लेना हमारे लिए आज भी इतना ही जरूरी है, जितना कि प्रेमचन्द के समय में साम्राज्य के विरुद्ध देश के स्वतंत्रता-संग्राम को आगे बढ़ाने के लिए समझ लेना जरूरी था।

इन सबको जानने के लिए हमें उनकी कृतियों की सूची बनानी होगी। यह संभव नहीं कि सब पुस्तकों का तिथि वार क्रम दिया जा सके, क्योंकि कभी-कभी ऐसा होता है कि कृति पहले लिखी जाती है और छपती बाद में है। कभी-कभी किन्हीं कारणों से पुस्तकों में तिथि दी ही नही जाती, तो कभी दी भी जाती है तो भिन्न पाई जाती है। भिन्न-भिन्न लोग उसकी भिन्न-भिन्न तिथियॉ देते हैं। ऐसी स्थिति में सही तिथि बताना असंभव हो जाता है। फिर भी यहॉ पर उनके साहित्य की सूची को दर्शाया गया है। उनके द्वारा रचित साहित्य की सूची इस प्रकार है---

उर्दू उपन्यासों की सूची

1. असरारे मआबिद

8 अक्टूबर 1903 से 1 फरवरी 1905 तक बनारस के उर्दू साप्ताहिक 'आवाज ए खल्क' में क्रमश: प्रकाशित।

2. प्रतापचन्द

1901 में लिखा गया किन्तु कभी प्रकाशित नहीं हुआ। (मदन गोपाल)

3. हम खुर्मा व हम सबाब

1907 में हिन्दुस्तानी प्रेस लखनऊ से मुद्रित (प्रकाशक-- बाबू महादेव प्रसाद वार्मा, बुकसेलर्स अमीनाबाद, लखनऊ)

4. किश्ना (किशना)

संभवत: 1907 में बनारस मेडिकल हाल प्रेस से प्रकाशित हुआ।

5. जलवाए ईसार

1912 में इंडियन प्रेस इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित

6. बाजार ए हुस्न

1914 ई. में प्रकाशित।

7. गोश-ए आफियत

1922 में दारुल इशात पंजाब द्वारा प्रकाशित।

8. चौगाने हस्ती

सन् 1927 में दारुल इशात पंजाब द्वारा प्रकाशित।

9. वर्दा ए मजाज (पर्दए मिजाज)

1928 ई. में लाजपत राय एंड संस लाहौर द्वारा प्रकाशित।

10. निर्मला

1929 ई. में लाहौर से प्रकाशित।

11. गबन

1930 ई. में लाहौर से प्रकाशित।

12. मैदान ए अमल

1932 ई. में जामे मिलिया दिल्ली से प्रकाशित।

13. गोदान / गऊदान

1938 ई. में सरस्वती प्रेस से प्रकाशित। 22

14. बेवा

मई 1932 में प्रकाशित।

उर्दू लघु कथाएं

1.प्रेम पच्चीसी - 1 और 2, अक्टूबर 1914 और मार्च 1918

2.प्रेम बत्तीसी - 1 और 2, अगस्त 1920

3.प्रेम चालीसी - 1 और 2, मार्च 1930

4.सोजे वतन और सैर दरवेश - जुलाई 1908 और नवम्बर 1914

5.फिरदौस ए ख्याल- जुलाई 1929

6.ख्वाब ओ ख्याल - मई 1928

7.वारदात - फरवरी 1938

8.खाक ए परवाना - नवम्बर 1929

9.देहात के अफ़साने - 1939

10. आखिरी तोहफा - मार्च 1934

11. जाद ए राह (जादे राह) - जून 1936

12. दूध की कीमत - जून 1937

13. नजात - 1933 ई. में प्रकाशित।

14. मेरे बेहतरीन अफसाने - 1933 ई. में प्रकाशित।

15. कातिल - प्रकाशन तिथि अज्ञान

16. जेल - प्रकाशन तिथि अज्ञान

17. वफा की देवी - प्रकाशन तिथि अज्ञान

उर्दू नाटक

1.कर्बला - 1928

2.रूहानी शादी - 1936

उर्दू जीवनियाँ

1.राम चर्चा - 1928

2.बाकमालों के दर्शन - अगस्त - 1929

हिन्दी से अनुवादित

1.कुर्बे- वुसती में हिन्दुस्तानी तहज़ीब

कुरुनेवस्ता में हिन्दुस्तानी तहज़ीब - 1931

हिन्दी में अनुवादित

1.शबेतार - 1919

2.इन्साफ - प्रकाशन तिथि अज्ञात

उर्दू लेख संग्रह

1. मज़ामीन-ए - प्रेमचन्द-1960

पत्र -संग्रह

प्रेम चन्द के खतूत-1968

बच्चों की पुस्तकें

1.कुत्ते की कहानी - 14 जुलाई-- 1936

2.जंगल की कहानी - फरवरी-- 1936

3.राम चर्चा

हिन्दी उपन्यास

1. **प्रेमा -- 1907**
2. **सेवासदन -- 1919**

   'सेवासदन' उर्दू उपन्यास 'बाज़ारे हुस्न' का अनुवाद है जो 1914 में प्रकाशित हुआ था।
3. **प्रेमाश्रम -- 1921**

   प्रेमाश्रम 'गोशए आफ़ियत' का हिन्दी अनुवाद है। जो 1922 में दारुल इशात पंजाब द्वारा प्रकाशित है।
4. **वरदान -- 1921**

   वरदान उपन्यास ' जलवए इसाई ' का हिन्दी रूपान्तर है। जो 1912 में ई. इंडियन प्रेस इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित हुआ था।
5. **रंगभूमि -- 1925**

   रंगभूमि ' चौगाने हस्ती ' का हिन्दी अनुवाद है। जो सन् 1927 में दारुल इशात पंजाब द्वारा प्रकाशित हुआ।
6. **निर्मला -- 1925-26**

   उर्दू में भी वही नाम था। जो सन् 1929 में लाहौर से प्रकाशित हुआ।
7. **कायाकल्प -- 1926**

   कायाकल्प ' पर्दए मजाज ' का अनुवाद है। जो सन् 1928 में लाजपतराय एंड सन्स लाहौर से प्रकाशित हुआ।
8. **प्रतिज्ञा -- 1927**

   प्रतिज्ञा ' बेबा ' का अनुवाद है।
9. **गबन -- 1931**

   उर्दू में भी यही नाम है। जो 1930 में लाहौर से प्रकाशित हुआ।
10. **कर्मभूमि -- 1932**

कर्मभूमि ' मैदाने अमल ' का अनुवाद है। जो 1932 में जामे मिलिया दिल्ली से प्रकाशित हुआ था।

11. गोदान -- 1936

गोदान उपन्यास ' गऊदान ' का हिन्दी अनुवाद है। जो 1938 में सरस्वती प्रेस द्वारा प्रकाशित हुआ था।

12. मंगलसूत्र -- 1948

यह उपन्यास अपूर्ण रह गया था।

उन रचनाओं की सूची जिनमें लेखक ने अपना नाम नबाबराय दिया है--

1.हम खुर्मा व हम सबाब

2.रूठी रानी

3.किशना

4.जलवए ईसार

5.प्रेमा

कहानी

कहानियों के नाम और उनका विस्तृत परिचय पॉचवे अध्याय में दिया जा रहा है।

हिन्दी कहानी संग्रहो के नाम

1.सप्तसरोज - जून 1917

2.नव-निधि - दिसम्बर 1917

3.प्रेम-पूर्णिमा - 1918

4.प्रेम पच्चीसी - 1923

5.प्रेम प्रसून -1924

6.प्रेम द्वादशी - जून 1926

7.प्रेम - प्रमोद - दिसम्बर 1926

8.प्रेम -प्रतिमा -1926

9.प्रेम - तीर्थ -1928

10. गल्प - समुच्चय -1928

11. प्रेम - चतुर्थी मार्च - 1929

12. अग्नि समाधि तथा अन्य कहानियॉ - अगस्त 1929

13. पॉच फूल - नवम्बर - 1929
14. प्रेम - प्रतिज्ञा - 1929
15. प्रेम -कुंज - 1930
16. प्रेम - पंचमी - 1930
17. सप्त -सुमन - 1930
18. समर -यात्रा - 1930
19. प्रेमा - प्रतिमा - 1931
20. मृतक भोज, जनवरी - 1932
21. विद्रोही तथा अन्य कहानियॉ, जनवरी - 1932
22. सोहाग तथा शव अन्य कहानियॉ, जनवरी - 1932
23. प्रेरणा तथा अन्य कहानियॉ, अक्टूबर - 1932
24. समर यात्रा और अन्य कहानियॉ, अक्टूबर -1932
25. प्रेमचन्द की सर्वश्रेष्ठ कहानियॉ, सितम्बर -1934
26. पंच-प्रसून - 1934
27. नवजीवन - 1935
28. प्रेम - पीयूष - 1935
29. मानसरोवर-1 - मार्च 1936
30. मानसरोवर -2, मार्च 1936
31. प्रेमचन्द का हास्य - 1936
32. कफन और अन्य कहानियॉ - मार्च, 1937
33. मानसरोवर - 3, अप्रैल 1938
34. नारी जीवन की कहानियॉ - 1938
35. ग्राम्य जीवन की कहानियॉ - 1938
36. मानसरोवर - भाग-4, 1939
37. अल्ग्योझा और अन्य कहानियॉ - 1945
38. लैला और दूसरी कहानियॉ - 1945
39. मानसरोवर- भाग-5, 1946

40. मानसरोवर- भाग-6, 1946

41. मानसरोवर- भाग-7, 1947

42. मानसरोवर- भाग-8, 1950

43. सोजेवतन - अप्रैल 1961 (अनुवाद)

44. गुप्तधन - 1, जुलाई 1962

45. गुप्तधन - 2, जुलाई 1962

46. पचास कहानियॉ - 1963

47. प्रेमचन्द की अप्राप्य कहानियॉ - यन्त्रस्त

हिन्दी में लेख एवं पुस्तकें

1.स्वराज्य के फायदे - जुलाई 1921

2.कुछ विचार - 1939

3.विविध प्रसंग- 1, जुलाई 1962

4.विविध प्रसंग- 2, जुलाई 1962

5.विविध प्रसंग- 3, जुलाई 1962

6.प्रेमोपहार - 1963

7.मंगलसूत्र व अन्य रचनाएँ - प्रकाशन तिथि अज्ञात

8.साहित्य का उद्देश्य - जुलाई 1954

हिन्दी नाटक

1.संग्राम - फरवरी, 1923

2.कर्बला - नवम्बर, 1924

3.प्रेम की वेदी - अप्रैल, 1933

4.होरी (नाट्य रूपान्तर) 1948

5.चन्द्रहार (नाट्य रूपान्तर) 1952

हिन्दी में अनुवाद किए गए संग्रह

1.अहंकार - अक्टूबर, 1923

2.टाल्सटाय की कहानियॉ - अनुवाद, 1923

3.आजाद कथा - अगस्त, 1925

4.न्याय - 1930

5.हड़ताल - 1930

6.चॉदी की डिबिया - 1930

7.पिता के पत्र पुत्री के नाम - जुलाई, 1931

8.सृष्टि का आरम्भ - मार्च, 1937

9.शबेतार - जुलाई - 1962

हिन्दी में जीवनी संग्रह

1.दुर्गादास -- 1938

2.रामचर्चा -- 1938

3.कलम तलवार और त्याग-1, 1940

4.कलम तलवार और त्याग-2, 1940

हिन्दी में पत्र संग्रह

1.चिट्ठी पत्री-1-- जुलाई -- 1962

2.चिट्ठी पत्री-2-- जुलाई -- 1962

प्रेमचन्द द्वारा रचित उपन्यासों का संक्षिप्त परिचय

1-- सेवासदन - 1919

सेवासदन प्रेमचंद का पहला हिन्दी उपन्यास है। जो उर्दू उपन्यास ' बाजारे हुस्न' का अनुवाद है। जिसका प्रकाशन 1914 में हुआ था। इस उपन्यास में प्रेमचंद ने नारी समाज के प्रश्नों को उठाया है और विशेषकर वेश्या समाज के सुधार का लक्ष्य रखते हुए उनसे संबंध रखने वाली समस्या पर विचाार किया है।

कथानक:---

दरोगा कृष्ण चन्द का परिवार एक मध्यम वर्गीय परिवार है। इस परिवार में उनकी पत्नी गंगाजली और दो लड़कियाँ सुमन और शान्ता है। दरोगा जी बड़े सज्जन, ईमानदार और नेक इन्सान हैं। वह कभी घूस नहीं लेते थे। अपने पूरे वेतन से वह अपना परिवार चलाते लेकिन फिर भी सुमन के विवाह में पैसों की जटिल समस्या आ गई। घर में संचित द्रव्य कुछ भी न था। कृष्णचन्द को बाध्य होकर महन्त रामदास नामक एक मोटे आसामी से तीन हजार रूपये अबैध द्रव्य लेना पड़ा। लेकिन कृष्णचन्द वह रूपये न पचा सके क्योंकि महन्त रामदास एक कत्ल के इल्जाम में फॅसे हुए थे। जिससे कृष्णचन्द्र का रहस्य खुल गया और उन्हें चार वर्षो के कारावास का दंड मिला।

सुमन अपनी मॉ और बहन के साथ अपने नाना के घर चली गई। उसका विवाह बनारस में रहनेवाले गजाधर प्रसाद नाम के व्यक्ति से कर दिया गया। वह 15 रूपये के क्लार्क थे। आयु तीस वर्ष की थी, जो सुमन की तुलना में अधिक थी। विवाह के बाद कुछ दिनों तक उनके संबंध अच्छे रहे लेकिन बाद में दोनों के बीच मनमुटाव हो गया। सुमन को घर के सभी काम करने पड़ते थे। गजाधर सुमन की सामान्य आवश्यकता को भी पूर्ण नहीं कर सकता है । सुमन के कपड़े फट चुके थे लेकिन नए कपड़ों की व्यवस्था करनेवाला भी कोई न था । इसी बीच सुमन की मॉ का भी स्वर्गवास हो गया। अब खिंचाव बढ़ता गया और एक दिन ऐसा आया कि आवेश में आकर सुमन गजाधर का घर छोड़कर चली गई।

सुमन अपने परिचित पड़ोस के एक परिवार में आश्रय के लिए पहुॅची, वह परिवार पद्मसिंह वकील का था, जिनकी पत्नी सुभद्रा से सुमन की पहचान थी, किन्तु लोकोपवाद के भय से वकील पद्मसिंह भी सुमन को घर में आश्रय न दे सकी। इसी वजह से सुमन भटकती-भटकती अपने घर के सामने रहनेवाली भोली नाम की वेश्या के घर पहुॅची। यहॉ उसका स्वागत हुआ। उसके रूप और गुणों की प्रशंसा हुई।

यह वही वेश्या थी, जिसके संबंध में सुमन ने अपने पति से भी दो-चार बार चर्चा की थी और जिसे उसने अनेक बार सभ्य पुरुषों से सम्मान पाते, मन्दिरों में नृत्य करते और धार्मिक व्यक्तियों द्वारा सम्मानित होते देखा था। उसे इन दृश्यों को देखकर कई बार धक्का लगा था और उसके संस्कार डॉवाडोल हो उठे

थे। उसने वेश्याओं को नीची निगाह से देखना सीखा था। वह सुनती आई थी कि वेश्याओं का जीवन गर्हित हुआ करता है, पर यहॉ वह देखती है कि भोली खूब चैन से रहती है और सारा समाज तथा सभी सभ्य पुरुष उसकी कद्र करतें हैं।

पदमसिंह का भतीजा सदन गॉव से बनारस आया था। वह पढ़ा लिखा नहीं था, लेकिन हष्ट-पुष्ट और सुडौल युवक था। पदमसिंह उसे पढ़ाना चाहते थे लेकिन उसका मन घूमने-फिरने में ही लगता था। इसी घूमने- फिरने की वजह से वह सुमन के कोठे तक पहुॅच गया। सुमन को जब यह पता चला कि वह पदमसिंह का भतीजा है तो उसने उसे भाव देना बन्द कर दिया। एक दिन सदन चाची सुभद्रा का हार चुरा कर सुमन को भेंट करने लाया था, लेकिन सुमन ने दूसरे ही दिन पदमसिंह को वह हार लौटा दिया।

बनारस में विट्ठलदास नामक एक कट्टर समाज सुधारक थे। उनको यह गॅवारा न हुआ कि एक भले घर की लड़की सुमन वेश्यालय में पहुॅच गई है। वे पदमसिंह के साथ परामर्श करने लगे और बाद में सुमन के कोठे पर जाकर उसे समझाने लगे कि वह कोठा छोड़कर स्वतंत्र रूप से अपनी जिन्दगी जिए। लेकिन सुमन ने उनके सामने समाज का कच्चा चिट्ठा खोला और उनसे तर्क करने लगी। विट्ठलदास उसके तर्क का कोई उत्तर न दे सके। लेकिन वे अपनी बात से पीछे नहीं हटे। उन्होंने प्रस्ताव रखा कि वह वेश्या का घर छोड़कर स्वतंत्र आजीविका ले, उसके सामने सबसे बड़ा प्रश्न यह था कि वह कौन सी आजीविका ले। अन्त में यह तय हुआ कि सुमन विधवाघर में रहकर विधवाओं की सेवा करेगी।

इस घटना को चार वर्ष बीत गये। सुमन के पिता जेल से छूट आये थे, किन्तु अब संसार से उदास होकर अर्द्धविक्षिप्त से रहने लगे। उनकी दूसरी लड़की शान्ता के विवाह का बोझ उनके मामा उमानाथ ने उठाया था जिसमें कृष्णचन्द वैसे ही कुछ मदद नहीं कर सकते थे। शान्ता का विवाह उमानाथ ने सदन के साथ तय किया। बारात आई लेकिन बारातवालों को सुमन के बारे मे पता चलने पर बारात लौट गई।

इन्हीं दिनो दालमंडी (बनारस) के वेश्यालयों को शहर के बाहर ले जाने की चर्चा चल रही थी। वेश्याएं आत्मनिर्भर बन उनको शिक्षण मिले, सात्विक जीवन जी सके। यह प्रस्ताव पदमसिंह का था, जिसका समर्थन विट्ठलदास ने किया था। लेकिन म्युनिसपालिटी के मुसलमान तथा कुछ हिन्दुओं ने मिलकर इसका विरोध किया, इसलिए यह स्थगित हो गया।

सदन जब गॉव से वापस आया तो वह अपने विवाह से संबंधित घटना के बारे में सोचने लगा लेकिन वह कुछ तय नहीं कर पा रहा था कि उसका वह निर्णय गलत था या सही। वह सुमन की ओर झुका। वह उससे मिलने दालमंडी गया लेकिन वह वहॉ नहीं थी। इसी समय उसने क्वींस पार्क में वेश्या सुधार संबंधित भाषण सुना जिससे उसका हृदय परिवर्तित हो गया। वह अब अपना अधिकांश समय धार्मिक कार्यो में

लगाने लगा। अब सदन का मन पाप और पुण्य के बीच बड़े जोरों से चक्कर काटने लगा। एक दिन वह सुमन को गंगा स्नान करते देखता है। उसकी सात्विक और मुर्झायी हुई काया को देखकर उसको बड़ी ग्लानि हुई वह उससे बिना मिले चला जाता है।

इधर कृष्णचन्द शान्ता का विवाह असफल होने पर बड़े निराश हो गये और एक दिन वह आधी रात को घर से निकल पड़ते हैं। उन्हें रास्ते में एक साधू बाबा मिलते हैं वह साधु और कोई नहीं बल्कि गजाधर था। सुमन के जाने के बाद वह ग्लानि वश साधू बन गया था। कृष्णचन्द के पूॅछने पर वह बताता है कि सुमन को इस रास्ते पर लाने का पूरा श्रेय गजाधर को जाता है। उसके ही कारण उसकी यह दुर्गति हुई। कृष्णचन्द का हृदय सुमन के प्रति नरम हो जाता है लेकिन बेटी की यह दशा वह देख नहीं पाता है इसलिए जब गजाधर बाबू सो जाते हैं तब वह उनके आश्रम से चुपके से निकलकर पास में बह रही गंगा में अपने प्राणों को समर्पित कर देता है।

पदमसिंह का जीवन अब वकालत के पेशे से हटकर समाज-सुधार के कार्यों में व्यतीत होने लगता है। वह शान्ता के विवाह की घटना से काफी व्यथित था। उसी समय उनको एक दिन शान्ता का पत्र मिल जाता है, जहॉ पर उसने उनको अपना धर्म पिता संबोधित किया था तथा उसने अपनी शरण में लेने की विनती की थी। पदमसिंह ने विट्ठलदास से सलाह-मशबिरा किया, विट्ठलदास ने शान्ता को तुरन्त बुलाने को कहा। उन्होंने यह भी कहा कि शान्ता कुछ दिनों अपनी बहन के साथ विधवाश्रम में रहेगी।

विधवाश्रम मे ंरहने वाली सुमन को सदैव आत्म ग्लानि होती थी कि उसकी वजह से उसकी बहन की दुर्गति हुई, इसलिये वह अपने प्राण त्यागने के लिए गंगा घाट जाती है। वहॉ पर साधु के रूप में उसे अपना पति गजाधर मिलता है जो अपनी भूल की क्षमा याचना मॉगता है तथा उसी के द्वारा उसे पता चलता है कि उसके पिताजी ने गंगा में अपने प्राण त्याग दिए। यह सुनकर सुमन का निश्चय और बलवान हो जाता है। लेकिन गजाधर अपने तर्क वितर्क से सुमन को सच का ज्ञान कराता है। आज सुमन गजाधर के तर्क का कोई जबाब नहीं दे पाती और आश्रम लौट जाती है। शान्ता दूसरे दिन सुमन से आश्रम में मिलती है। सुमन मानसिक वेदना कि वजह से अत्यन्त बीमार हो जाती है और शान्ता उसकी दिन रात सेवा करती है।

सदन अब सुधर चुका है। वह अब पदमसिंह के चरित्र से प्रभावित होता है। पदमसिंह के वेश्या सुधार संबंध में समाचार पत्र में विपरीत टिप्पणियॉ छप रही थी। अब सदन इतना बड़ा और समझदार हो गया था कि उन टिप्पणियों का मुॅह तोड़ जबाब दे रहा था। इसी बीच सदन की मुलाकात सुमन एवं शान्ता से हो

गई। सुमन ने सदन को शान्ता को अपनी पत्नी स्वीकार करने की याचना की, लेकिन सदन में इतना आत्मबल नहीं था और उसे लोकोपवाद से भी डर था।

सदन ने पदमसिंह तथा अपने पिता विट्ठलदास की सहायता लिए वगैर आत्मनिर्भर जीवन व्यतीत करने का निश्चय किया। आजीविका के बारे में वह गंगा के तट पर सोच रहा था कि उसको एक नाव में मल्लाहों की सुरीली तानें सुनाई दी। उसने तय किया कि वह एक नाव चलाएगा। इसलिए उसने अपना एक जेवर बेचकर एक नाव खरीदी, क्रमश: दिन बीतने पर सदन को नाव के व्यापार में प्रगति मिलती गई, अब वह मल्लाहों का नेता बन गया तथा उसकी अब कई नावें चलने लगी।

एक दिन सदन गंगा किनारे उज्जवल चॉदनी रात में बैठा था। तभी एक नाव में दो स्त्रियॉ दिखाई दीं। वह शान्ता और सुमन थी। सदन ने उन्हें पहचान लिया और दोनों का स्वागत किया। अब वे लोग गंगा तट पर ही एक छोटी सी झोपड़ी बनाकर रहने लगे। सदन ने शान्ता को अब स्वीकार कर लिया था। कुछ दिनों के बाद सुमन ने देखा कि शान्ता तथा सदन का व्यवहार उसके प्रति पहले जैसा नहीं रहा। अब वे लोग उसे उतना सम्मान नहीं देते। सुमन समझ गई और एक दिन शान्ता का घर छोड़कर निकल गई। रास्ते में उसे एक साधु मिलते हैं जो गजाधर बाबू ही हैं जो उसे सही राह दिखाने की शिक्षा देते हैं। गजाधर बाबू उन्हें सेवाधर्मी उपदेश देते है तथा उनके खोले हुए अनाथालय जहॉ वेश्याओं की पचास कन्याएं रहा करती हैं। उन्हे शिक्षा एवं सुधारने के रूप में रहने के लिए कहते हैं।

सब कुछ सुधर चुका है लेकिन पदमसिंह के मन की ग्लानि अब तक नहीं मिटी। उनको अब तक सुमन को उस दिन आश्रय न देने की भूल के लिए खुद को माफ नहीं कर पाए थे। इसलिए उस आश्रम के एक मात्र संचालक होने के बावजूद वह कभी आश्रम में नहीं जाते थे, क्योंकि वहॉ सुमन रहती थी और वे सुमन से नजरे नहीं मिला सकते थे और न ही उनमें यह साहस था कि वह सुमन के सामने जाय।

2 -- प्रेमाश्रम - 1921

सेवासदन के पश्चात प्रेमचंद ने 'प्रेमाश्रम' की रचना की। 'प्रेमाश्रम' 'गोशए आफियत' का अनुवाद है। जिसका प्रकाशन 1922 में दारुल इशाल पंजाब से हुआ था। इस उपन्यास में प्रेमचंद ने मुख्यत: किसानों और जमीदारों के प्रश्नों को उठाया है। परन्तु इसमें इन दोनों वर्गो से संबंधित अन्य व्यवसायों और निहित स्वार्थों के लोगों का चित्रण भी किया है। इस उपन्यास में प्रेमचंद ने ग्रामीण जीवन के भिन्न-भिन्न स्तरों, नागरिक वर्ग के भिन्न पेशों और सत्ताधारी प्रतिनिधियों का व्यापक चित्रण किया है।

कथानक

इस उपन्यास में प्रेमचन्द ने यह दिखाया है कि धर्म का दूसरे स्वार्थी जन किस प्रकार व्यक्तिगत हित साधना हेतु प्रयोग कर रहे थे। कथा का आरम्भ लखनपुर गॉव में, जो बनारस से बारह मील उत्तर है, कराया गया है। किसान आपस में अपने काम बॉट रहे थे। इतने में जमींदार ज्ञानशंकर का चपरासी गिरधर गॉव में से शुद्ध घी वसूल करने आया क्योंकि जमीदार के पिता की बरसी थी और बाजार में घी का भाव दस छटॉक था लेकिन गॉव में उसे वह काफी सस्ते में मिल जाएगा। गॉव के सभी लागो ने घी दिया लेकिन मनोहर नामक किसान ने नहीं दिया।

जमींदार साहब बनारस के औरगांबाद मुहल्ले मे रहते थे। जटाशंकर के मर जाने के पश्चात प्रभाशंकर जमींदारी का काम देखते है। परंतु जटाशंकर के पुत्र ज्ञानशंकर इसे पसन्द नहीं करते क्योंकि प्रभाशंकर पुराने ख्यालों के थे एवं उदार भी थे। जो ज्ञानशंकर को पसंद नहीं था। वह नए युग का जमींदार बनना चाहता था। उनको बरसी में हो रही फिजूलखर्ची पसंद नहीं थी क्योंकि प्रभाशंकर अपने भाई की बरसी धूम धाम से मनाना चाहते थे।

इस तरफ मनोहर के घी न देने पर सारे गॉव में हल्ला मच गया। मनोहर कि स्त्री विलासी कारिन्दा गौस खॉ के पास मनोहर की तरफ से क्षमायाचना करने गई लेकिन कारिन्दा गौस खॉ ने चीढ़ कर कहॉ कि मनोहर को बनारस जाकर जमीदार से माफी मॉगनी होगी। मनोहर बनारस जाकर क्षमायाचना करने लगे। प्रभाशंकर इस मामले को बढ़ाना नहीं चाहते थे लेकिन ज्ञानशंकर उस पर उबल पड़े। इस प्रसंग मे चाचा-भतीजे में कहा सुनी हो गई।

बनारस के मजिस्ट्रेट ज्वाला सिंह ज्ञानशंकर के सहपाठी थे। उसी समय प्रभाशंकर का पुत्र दयाशंकर जो उस इलाके का दरोगा था, उस पर अभियोग लगाया गया और मुकदमा चल रहा था। प्रभाशंकर ने ज्ञानशंकर को ज्वालासिंह से सिफारिश करने को कहा लेकिन अभी-अभी चाचा भतीजे में झगड़ा हुआ था और वह खुद चाहता था कि दयाशंकर फॅसे। इसलिए वह ज्वालासिंह को और भड़काता है। वह अब चाचा से अलग होना चाहता है। डिप्टी ज्वालासिंह लखनपुर दौरे पर गये। उनका कैम्प गॉव के बाहर था। डिप्टी साहब के चपरासी बैगार वसूल करने गये थे। गॉव के सभी लोंगों ने बैगार दिया लेकिन मनोहर के लड़के बलराज ने बैगार नहीं दिया। वह अपने पिता से भी ज्यादा निडर था। जब ज्वालासिंह ने उसका साहस देखा तो प्रसन्न हुए लेकिन गॉव का कोई आदमी डर के मारे साथ नहीं दे रहा था। न ही वह अपने दु:ख-दर्द का सच्चा दृश्य उनके सामने रख सकते थे।

ज्ञानशंकर की पत्नी विद्या रायबहादुर कमलानन्द की छोटी पुत्री थी। उनकी बड़ी बेटी गायत्री गोरखपुर के एक बड़े जमीदार के यहाॅ ब्याही थी। उनका एक लड़का भी था जिसका अचानक देहान्त हो गया। ज्ञानशंकर और विद्या भाई के देहान्त पर वहाॅ पहुॅचे। गायत्री भी वहाॅ पहुॅची। अब वह विधवा हो गई थी। वह बड़ी रूपवान थी और उसके पास बड़ी जमींदारी भी थी। रायबहादुर बड़े रसिक तो थे ही और उनके पास बड़ी रियासत भी थी। उनके आगे ज्ञानशंकर छोटे लगते थे। जिससे ज्ञानशंकर ससुर से ईर्ष्या करने लगे। ज्ञानशंकर गायत्री पर डोरे डालने लगे। गायत्री उनका आशय नहीं जान पाई थी लेकिन जब एक दिन उन्होंने एक युक्ति से विद्या को घर पर रखकर गायत्री को थियेटर ले गये और वहाॅ उन्होंने उनकी दुर्भावना का संकेत दिया। तब गायत्री थियेटर से लौटने पर दूसरे ही दिन वह गोरखपुर चली गई।

रायबहादुर कमलाननद को अब कोई पुत्र न था। ज्ञानशंकर का पुत्र मायाशंकर उसका उत्तराधिकारी हो सकता था। ज्ञानशंकर चाहता था कि रायबहादुर दूसरी शादी न करे पर वह उनको खुलकर कह नहीं सकता था।

ज्वालासिंह ने बलराम के प्रति हमदर्दी दिखाई लेकिन गाॅव के कुछ लोग जैसे मुंशी ईजाद हुसैन और जमींदार के कारिन्दा गौरा खाॅ इससे सन्तुष्ट न थे। उन्होंने ज्वालासिंह के कान भरे। ज्वालासिंह ने बेकार की घटना के लिए तहकीकात शुरू करवाई, जो दयाशंकर कर रहा था। दयाशंकर घूस खाना सीख गया था, इसलिए उसने गाॅव वालों से 100-100 रूपये मुचलका लिया। उस वर्ष फसल यों ही मारी गई थी, मुचलके ने गाॅव की रीढ़ तोड़ दी।

राय कमलानन्द और ज्ञानशंकर नैनीताल गये। वहाॅ उन्होंने सत्ताधारी समाज के विलासमय चित्र देखे। ज्ञानशंकर को बहुत बुरा लगा और उन्होंने उस वर्ग की दुवृत्तियों पर एक कड़ा लेख लिखा। जिससे, जिनके विरुद्ध यह लेख लिखा गया था, वे लोग भी ज्ञानशंकर के प्रशंसक बन गये। ज्ञानशंकर को उच्चवर्ग की फिजूलखर्ची से कोई लेना-देना नहीं था, वह तो मात्र राय कमलानन्द के अपव्यय से चिढ़ते थे।

इसी समय एक महत्वपूर्ण घटना घटित हुई। 6 वर्षों के अमेरिका प्रवास के बाद ज्ञानशंकर का बड़ा भाई प्रेमशंकर स्वदेश वापस आता है। ज्ञानशंकर को अपने भाई का स्वदेश लौटना अपने हित के प्रतिकूल दिखता है। लौटने के बाद भाई पारिवारिक सम्पत्ति का हक माॅग सकता था। इधर ज्ञानशंकर का स्वार्थ प्रेरित करता है कि वह भाई को अॅगूठा दिखा दे। इसी कारण वह एक बार धर्म का दुबारा सहारा लेता है। धूर्त ज्ञानशंकर जानता है कि हिन्दू समाज के प्रचलित विश्वास में विदेश यात्रा को पाप माना गया है। धर्मभीरु हिन्दू समाज की इस कमजोरी का संबल पकड़कर अपने स्वार्थ हेतु पूरे समाज को प्रेमशंकर के विरुद्ध खड़ा कर देता है। वह प्रेमशंकर की पत्नी को भी भड़काने में कामयाब हो जाता है। पर प्रेमशंकर समाज के

सामने निडर होकर अकेला लड़ता है और सेवा कार्य करता है। वे गॉव के किसानों के बीच रहने लगे। बॉध टूटने से गॉव वालों की मदद भी की और नया बॉध बनाने में उनकी सहायता भी की। ज्ञानशंकर को यह डर था कि उसका भाई उसके पास से जायदात में हिस्सा न मांगे, लेकिन प्रेमशंकर ने कहा कि उन्हें पिता की जायदात से कोई भी चीज नहीं चाहिए। ज्ञानशंकर इस बात से बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने उसी समय गॉववालों पर लगान इजाफा का दावा कर दिया।

इसी समय गायत्री देवी का पत्र आया उन्होंने ज्ञानशंकर को जमींदारी का प्रबंधक बनाकर बुलाया। ज्ञानशंकर वहॉ चला गया और पूरी निष्ठा से वहॉ का काम संभालने लगा। उसके काम से गायत्री एवं वहॉ के सरकारी अफ़सर खुश हुए। पहले तो ज्ञानशंकर को वेतनभोगी बनने में शर्म लगती थी लेकिन जब वेतन की रकम ज्यादा मिलने लगी तो उनका कोई आपत्ति नहीं हुई। बीच-बीच में ज्ञानशंकर बनारस आता रहता था। कारिन्दा गौस खॉ अपने मालिक के नक्से कदम पर चल रहा था और वो गॉव वालों का तालाब में पानी पीना रुकवा देता है। उस पर गॉव वालों ने केश कर दिया। गौस खॉ वह केश हार जाता है इसी समय एक घटना घटित होती है। गौस खॉ ने मनोहर की स्त्री विलासी को बड़ा अपमानित किया। यह बात जब मनोहर और बलराज को पता चलता है तो वह उससे बदला लेने का निश्चय करता है। एक दिन चुपके-चुपके जाकर बलराज ने गौस खॉ का गला काट डाला। इसके बाद वह फरार हो गया। इस दुर्घटना से गॉव वालों के ऊपर संकट आ पड़ा। गॉव भर के लोंगों के ऊपर मुकदमा दायर किया गया और पैसों के सामने गॉव वालों की हार हुई। ज्ञानशंकर को यह आशा हो गई कि अब वह किसानों को पराजित करने में कामयाब होगा। इसलिए वे निश्चित होकर गायत्री की जमींदारी पर ज्यादा ध्याान देने लगे। और इधर ज्ञानशंकर धार्मिक शैली अपनाने लगा। रासलीला का आयोजन करता तो कभी-कभी गायत्री और ज्ञानशंकर उसमें हिस्सा भी लेते। अदालत में अब मुकदमा चलने लगा। मनोहर को गॉव वालों की इस दशा पर बहुत लज्जा आ रही थी क्योंकि यह दशा उसी की वजह से हुई थी। इसलिए उसने जेल में ही आत्महत्या कर दी। गॉव वालों का वकील फीस कम पड़ने की वजह से मुकदमे के ही दिन दूसरे मुकदमें की पैरवी करने चला गया। जिससे गॉव वालों की हार हुई। इधर ज्ञानशंकर की भक्ति भावना बढ़ने लगी और वह अब कुर्सी टेबल पर बैठने के बजाय जमीन पर ही बैठने लगा। गायत्री अब उसकी पुजारिन बन गई थी। इसी बीच राय कमलानन्द ने एक संगीत सम्मेलन रखा था। जहॉ गायत्री ज्ञानशंकर तथा विद्यावती भी आई थी। इस अवसर पर ज्ञानशंकर और विद्यावती में कहा सुनी हो गई। बात यहॉ तक बढ़ गई कि रायसाहब ने ज्ञानशंकर से उनका सारा पाखंड खुलवा दिया कि वह गायत्री को कैसे ठग रहा है। ज्ञानशंकर को बड़ी लज्जा आई उन्होंने गोमती में अपने प्राण विसर्जित करने का निर्णय किया। लेकिन कूटबुद्धि ने यह नहीं

होने दिया और वे स्नान करके वापस चले आए। ज्ञानशंकर ने रायबहादुर को मारने का निश्चय किया। उन्होंने रायबहादुर के खाने में विष मिला दिया। रायबहादुर जान गये कि उनके खाने में विष है फिर भी अपने योग साधना के बल पर उन्होंने खाना खाया। उनको विष का असर काफी रहा तकलीफ भी हुई लेकिन योगबल से वे उससे मुक्त हो गये। ज्ञानशंकर यह देखकर लखनऊ से नौ-दो-ग्यारह हो गये। काशी आने पर उन्होंने गायत्री को वहाँ पत्र द्वारा बुलवाया। ज्ञानशंकर की पत्नी ने गायत्री और ज्ञानशंकर के बारे में बहुत कुछ सुना था इसलिए वह भी काशी पहुँची। विद्यावती ने नाटक में हिस्सा लिया जो ज्ञानशंकर को पसंद नहीं आया। ज्ञानशंकर और गायत्री जब एक कमरे में राधा-कृष्ण की बातें कर रहे थे तो गायत्री सुधबुध खोकर ज्ञानशंकर को ही कृष्ण समझने लगती है और उसके आलिंगन मे आ जाती है। विद्यावती यह देख लेती है तब ज्ञानशंकर उसे वहाँ से भगा देते है। गायत्री लज्जित होती है लेकिन वह भक्ति-भावना में डूबकर अपना नैतिक विवके खो देती है। ज्ञानशंकर अपनी चालाक बुद्धि से गायत्री की जायदाद अपने बेटे मायाशंकर के नाम करवा देता है। विद्यावती यह आघात नहीं सह सकती और जब प्रेमशंकर की पत्नी श्रद्धा भी इस बात की पुष्टि करती है कि दोनों के बीच कुछ चल रहा है तो वह इसी सोच-विचार में बीमार पड़ जाती है और शीघ्र ही इहलीला समाप्त कर देती है।

क्रमश: गायत्री ज्ञानशंकर के इरादों को समझ गई। उन्होंने मायाशंकर को प्रेमशंकर को सौंप दिया और आदेश दिया कि ज्ञानशंकर से कोई संबंध न रखे। अब गायत्री तीर्थयात्रा पर निकल गई। वह बदरीनारायण तक जाना चाहती थी पर बीच में ही लौट आई और चित्रकूट की ओर चली गई। वहाँ उसने एक महात्माजी की चर्चा सुनी जिसकी कुटी एक पहाड़ी पर थी। गायत्री वहाँ जाने के लिए निकली लेकिन बीच में ही वह पहाड़ी की खाई में गिरकर पर्वत तल में विलीन हो गई। उसी समय ज्ञानशंकर को पता चला कि राय कमलानन्द ने अपनी सारी जायदाद मायाशंकर के नाम कर दी है। जब मायाशंकर का तिलकोत्सव आया तो शहर के बड़े-बड़े लोग आए थे। इसी उत्सव में उसने जमींदारी प्रथा का सुधार करने का प्रस्ताव किया और सबने स्वीकार किया। तभी ज्ञानशंकर को यह एहसास हुआ कि उनके पूरे जीवन भर की मेहनत पानी में गई। वह यह सह न सके और गंगा में अपने प्राण त्याग दिए।

3 -- वरदान - 1921

'वरदान' जलवए इसाई का हिन्दी रूपान्तर है। जो 1912 में इंडियन प्रेस इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित हुआ। यह एक लघुकथा है। इस लघुकाय उपन्यास में मध्यमवर्ग के जीवन के चित्र प्रस्तुत किए गए हैं। पर

इसमे वर्ग की मुख्य प्रवृत्तियों का पूर्ण चित्रण नहीं किया गया है क्योंकि इसका प्रतिपाद्य विषय प्रेम और कर्तव्य का संघर्ष है।

कथानक:---

मुंशी शालिग्राम के परिवार में उनकी पत्नी सुवामा ओर पुत्र प्रतापचन्द्र हैं। वर्षों के सुखमय जीवन के बाद सुवामा को दु:ख से पाला पड़ा। मुंशी शालिग्राम का सांसारिक जीवन दिखावा मात्र था। वस्तुत: उनकी प्रवृत्ति वैराग्य की ओर थी। कुंभ के मेले में सम्मिलित होने के बहाने वह प्रयाग गए, जहॉ से वापस नहीं आए। सुवामा पर विपत्तियों का पहाड़ टूट पड़ा। मुंशी जी उदार वृत्ति के कारण सहस्रों का ऋण छोड़ गये थे। सुवामा ने इलाका नीलाम कराके ऋण चुकाया। आधा मकान भी भाड़े पर उठा दिया। उसके किराएदार सजीवनलाल हैं जो ठेकेदारी करतें हैं। उनकी पुत्री बृजरानी (बिरजन) और प्रताप में मैत्री हो गई है। वयस्क होने पर मैत्री दृढ़ अनुराग में बदल गई, पर बृजरानी का विवाह नगर के डिप्टी श्यामाचरण के आवारा पुत्र कमलाचरण के साथ हो गया। प्रताप को इससे गहरा धक्का लगा उसने बृजरानी को विस्मृत करना चाहा, पर असफल रहा। उधर बृजरानी ससुराल चली गई। उसकी सुन्दरता से आकृष्ट होकर उसका पति कमलाचरण अपना सुधार करने लगा। वह शिक्षित होने का प्रयत्न करता है। पढ़ने के लिए उसे प्रयाग जाना पड़ा। यहॉ उसकी मनोवृत्तियों को पुन: छूट मिल गई और वह खराब रास्ते पर चलने लगा। वह एक माली की लड़की के ऊपर डोरे डालने लगा । एक दिन माली द्वारा रंगे हाथों पकड़ा गया। वहॉ से भागकर स्टेशन पहुॅचा। चलती गाड़ी में टिकट चेकर को पुलिस का आदमी समझकर वह इतना भयभीत हुआ कि गाड़ी से कूद पड़ा और उसकी मृत्यु हो गई। पति की मृत्यु के बाद बृजरानी की समस्त आशा आकाक्षांए सिमट गई। उसके मनोभाव कविता के रूप में प्रकट होने लगे। इस क्षेत्र में उसे बड़ी सफलता मिली। प्रताप के हृदय में कुछ समय तक प्रेम और कर्तव्य का द्वन्द्व चलता रहा। अन्ततोगत्वा वह सन्यासी हो गया और समाज सेवा करने लगा। उसने समाज सेवा द्वारा अल्पकाल में ही विपुल कीर्ति प्राप्त कर ली। इधर पीड़ित हृदय को सांत्वना देने के लिए बृजरानी ने अपनी सखी माधवी को उसकी ओर उन्मुख किया और उसके हृदय में प्रताप के प्रति प्रेम उत्पन्न कर दिया। माधवी प्रताप को पाने के लिए धैर्य से प्रतीक्षा कर रही थी। प्रताप देशाटन करता हुआ काशी आया। यहॉ माधवी से मिलने पर उसने उसकी मनोभावना समझ ली। उसके असीम धैर्य, सहनशीलता एवं अनुराग से प्रताप का हृदय भीग गया। वह माधवी के लिए सांसारिकता में पुन: प्रवेश कर ने के निमित्त प्रस्तुत होता जाता है, पर माधवी का प्रेमादर्श बहुत ऊॅचा था। वह सांसारिकता की सीमा में बॅध कर प्रताप को समाज सेवा से विमुख नहीं करना चाहती। प्रेम के प्रतिदिन की अपेक्षा न करके वह सन्यासिनी हो जाती है।

4-- रंगभूमि -- 1925

रंगभूमि उपन्यास 'चौगाने हस्ती' का हिन्दी रूपान्तर है। जो सन् 1927 में दारुल इशात पंजाब द्वारा प्रकाशित हुआ था। रंगभूमि का मुख्य प्रश्न औद्योगिक विकास का है। प्रेमचंद ने औद्योगिक सभ्यता के दुर्गुणों की ओर इस उपन्यास में विशेष रूप से ध्यान आकृष्ट किया गया है। ग्रामीण जीवन का सभ्यता, सरलता सादगी और स्वच्छता के स्थान पर औद्योगिक सभ्यता की जटिलता, पूंजी का केन्द्रीकरण, मजदूरों के नैतिक पतन आदि दुर्गुणों का उल्लेख किया गया है। आकार की दृष्टि से 'रंगभूमि' उपन्यास प्रेमचन्द का सबसे बड़ा उपन्यास है। यह दो भागों में लिखा गया है। प्राय: आठ सौ पृष्ठों में समाया हुआ है।

कथानक :---

बनारस के निकट एक पांडेपुर नामक गॉव था। जहॉ सूरदास नामक एक अंधा भिखारी रहता था। वह पांडेपुर की कुछ जमीन का स्वामी था, जो पुरखों से उसे मिली थी। वहॉ गॉव के पशु चरते थे और सूरदास उसे गॉव के ही काम लगाना चाहता था। लेकिन जान सेवक नामक एक इसाई उस पर सिगरेट की फैक्टरी लगाना चाहता था। सूरदास वह भूमि बेचना नहीं चाहता है। क्योंकि सूरदास औद्योगीकरण को मनुष्य के नैतिक पतन का कारण मानता है।

जान सेवक का बंगला सिगरा में था। उसके पिता सेना विभाग से अवकाश प्राप्त थे। जानसेवक के पुत्र का नाम प्रभु सेवक और पुत्री का नाम सोफिया था। सोफिया की अपनी मॉ से नहीं बनती थी क्योंकि उसकी धर्मान्ध मॉ पुत्री की जिज्ञासु और तर्कशील प्रकृति को ईसाई धर्म के प्रति उसकी अनावस्था समझती है। जानसेवक इस ओर विशेष ध्यान नहीं देते क्योंकि उनकी समस्त वृत्तियॉ उद्योग-व्यवसाय की ओर लगी रहती है। सूरदास का नकारात्मक उत्तर पाकर भी वह हतोत्साह नहीं होता।

बनारस म्युनिसपल बोर्ड के अध्यक्ष राजा महेन्द्रनाथ थे। उसकी पत्नी इंदु कुँवर भरतसिंह की पुत्री थी। भरतसिंह की पत्नी का नाम जाह्नवी था। वह अपने पुत्र विनय को एक आदर्श जाति सेवक बनाना चाहती है। एक अवसर पर सोफिया स्वयं विनय की जान अग्नि से बचाती है। तब से उसका भरतसिंह के परिवार से घनिष्ट संबंध हो जाता है। मॉ के स्वभाव की वजह से तथा जाह्नवी के प्यार से और अपनी बचपन की सहेली इंदु को पाकर सोफिया वहॉ ही रह जाती है। सोफिया के पिता जानसेवक इस दोस्ती का पूरा फायदा उठाना चाहते है और वह महेन्द्रनाथ के हस्तक्षेप द्वारा सूरदास की जमीन प्राप्त करने की चेष्टा करता है। सोफिया को यह पसंद नहीं आता है। वो किसी निर्धन और अपाहिज की भूमि व्यक्तिगत लाभ के लिए ली जाय यह सह नहीं सकती थी। इसी बीच इंदु से अपमाानित उसके हृदय ने उसके पति को नीचा

दिखाने का सोचा। सोफिया ने जिला अफसर क्लार्क को अपने प्रेमजाल में फॉसकर उसके माध्यम से सरकारी आज्ञा का भंग करना चाहा लेकिन महेन्द्र ने इसके विरुद्ध गवर्नर को अपील की और क्लार्क का तबादला उदयपुर हो गया। विनय उन दिनों उदयपुर में विद्रोहियों का सहयोगी समझकर पकड़ा गया था। वह उदयपुर में कैद था। सोफिया विनय एक दूसरे से प्रेम करते हैं। विनय को छुड़ाने के लिए सोफिया क्लार्क के साथ उदयपुर गई। क्लार्क को सोफिया के इरादे का पता नहीं था। वो दोनों जब उदयपुर गये तो उन दोनां की घनिष्ठता देखकर सब लोग उन दोनों को पति पत्नी समझने लगे, लेकिन उन दोनों में वह रिश्ता न था। क्लार्क के अधिकारों का फायदा उठाकर सोफिया विनय से मिलने कारावास में गई और विनय से उसके और क्लार्क के बीच के संबंधों का खुलासा किया। सोफिया ने विनय के बन्दीगृह से मुक्त होने का पत्र प्राप्त कर लिया था लेकिन विनय मुक्त होना नहीं चाहता था।

इधर कुॅवर भरतसिंह को विनय के बन्दी होने का समाचार मिल चुका था। उन्होंने नायकराम पण्डा को बंदीगृह से विनय को मुक्त कराने के लिए उदयपुर भेजा। नायकराम चतुर और साहसी आदमी था। उदयपुर पहुॅचकर उसने जेल के दारोगा से मेल-जोल कर लिया। उसकी सहायता से वह एक दिन कारावास पहुॅचा और विनय से मिलकर उसकी दयनीय स्थिति का ज्ञान कराया। इससे विनय जेल से बाहर निकलने के लिए तैयार हो गया। उसी दिन वे लोग जेल की दीवार फॉदकर निकल गये। उसी दिन संयोगवश उदयपुर में एक काण्ड हुआ। क्लार्क की मोटर से एक आदमी कुचलकर मर गया। लोंगों ने हंगामा कर दिया। लोगों को अपने से दूर करने के लिए क्लार्क ने गोली चला दी, जो एक व्यक्ति को लगी। अब उदयपुर की जनता ने क्लार्क के घर को घेर लिया और पथराव करने लगी। वहॉ सोफिया लोंगों को समझा रही थी पर लोगों ने पथराव शुरु किया। सोफिया घायल हुई। वहॉ विनय और नायकराम पहॅुचे। सोफिया को घायल देखकर विनय नें विद्रोहियों के नायक वीरपाल सिंह पर गोली चला दी। वीरपाल सिंह घायल हो गया। जनता और पुलिस के बीच पथराव शुरु हो गया। इसी बीच वीरपाल घायल सोफिया को उठा ले गया।

यह घटना पूरे उदयपुर में चकचार हो गई। अंग्रेजी सरकार के हस्तक्षेप के डर से राज्य के अधिकारीं अपराधियों को आड़ेधड़ पकड़ने गए, जिसमें कितने तो बेगुनाह थे। उनको तरह-तरह की यातना दी जा रही थी। विनय सोफिया को खोकर मानसिक रूप से असंतुष्ट बन गया था। वह क्रूरकर्मा, प्रजा पीड़क तथा निर्दय बन गया। राज्य के अत्याचारों और क्रूर नीति से दुखी होकर सोफिया उस मण्डली में शामिल हो गई। एक दिन सोफिया और विनय एक दूसरे से मिलते हैं। सोफिया विनय के इस बदलते रूप से दुखी होकर उसके साथ न जाने का फैसला करती है। विनय लज्जित होकर वहॉ से लौट आता है।

इसी मध्य जाह्नवी का पत्र मिलने पर विनय बनारस जाने के लिए निकला। इधर क्रांति कारियों के उग्रनीति के फलस्वरूप होने वाले हत्याकाण्डों के कारण सोफिया ने उनका साथ छोड़ दिया। रास्ते में दानों की भेंट हो गई। सोफिया ने अपने बर्ताव के लिए विनय से माफी मांगी। दोनो एक दूसरे को चाहते थे लेकिन रानी जाह्नवी की आज्ञा के विरुद्ध वे लोग शादी नहीं करना चाहते थे। वे लोग एक स्टेशन पर उतर जाते हैं और एक साल तक वहॉ अकेले रहते हें। एक साल के बाद वे घर जाते हैं। जाह्नवी उनको देखकर बहुत खुश होती है। परिवार वाले भी खुश हो जाते हैं।

सूरदास के विरोध के पश्चात भी उसकी जमीन पर सिगरेट का कारखाना बनता है। अब गॉव में दुराचार, जुए के अड्डे, वेश्यालय खुल गये थे। गॉव के जवानों में बुरी आदतों का फैलाव बढ़ता गया। अब जानसेवक को कारखाने में काम करने वाले मजदूरों के लिए मकान बनावाने थे इसलिए उसने गॉव की बस्ती महेन्द्र कुमार के द्वारा खाली करवाना शुरु किया। लोगों मे रोष भरा लेकिन अदालत के अनुसार उनको मुआबजा मिलना शुरु हुआ। सूरदास ने यह प्रण लिया कि जब तक वह जी रहा है तब तक वह अपनी झोपड़ी खाली नहीं करेगा। यह बात महेन्द्रनाथ जी को अपने अपमान जैसी लगी। उन्होंने पुलिस को आदेश दिया कि सूरदास की झोपड़ी गिरा दी जाय। जनता में सनसनी फैल गई। जनसमूह को शान्त करने के लिए पुलिस के एक स्वयं सेवक पर गोली चला दी गई। विनय ने उसका स्थान ग्रहण किया। पुलिस के सिपाहियों ने नि:सहाय लोगों पर गोली चलाने से इन्कार कर दिया।

सरकार ने यह रुख देखा तो राजपूताना से क्लार्क को यहॉ बुला लिया। जनता का क्रोध शासको की वजह से बढ़ता गया। एक दिन जानसेवक को जनता ने घेर लिया और उसका पीछा किया। सूरदास ने उसको रोकना चाहा तब क्लार्क को लगा कि सूरदास जनता को उकसा रहा है और उसने सूरदास को गोली मार दी। सूरदास को सोफिया अस्पताल ले गयी और वही उनकी मृत्यु हो गई। सूरदास पर प्रहार होते ही जनता और भड़क उठी, वह मरने मारने पर उतारू हो गई। विनय ने उन्हें रोकना चाहा लेकिन जनता विनय की उदयपुर की कृतियॉ भूली पर न थी। उन्होंने विनय पर भरोसा नहीं किया। विनय को यह सहा न गया। उसने अपनी देशभक्ति दर्शाने के लिए खुद ही अपने आप को गोली मारकर आत्महत्या कर दी। जनता की ऑखे खुल गई। विनय की मॉ अपने बेटे की वीरता पर खुश थी लेकिन सोफिया उसके बगैर नहीं जी सकती थी। सोफिया की मॉ सोफिया का विवाह क्लार्क से करवाना चाहती थी, उस स्थिति से निवृत्ति पाने के लिए सोफिया ने पानी में कूद कर जान दे दी। राजा महेन्द्र कुमार की दोरंगी नीति अनावृत हो गई। म्युनिसपालिटी में जनवादी शक्ति का प्रभाव बढ़ने लगा। इसलिए महेन्द्र कुमार को इस्तीफा देना पड़ा । वे अपने इस परिणाम का कारण सूरदास को मानते थे। उसके मर जानेके बाद भी उनको

चैन न था। इधर इंदु अपनी माँ के साथ समाज सेवा के रास्ते जुड़ गई। क्योंकि उसे अपने पति की स्वार्थपरता असह्य थी। सूरदास की स्मृति में पांडेपुर में प्रस्थापित उसकी मूर्ति तोड़ने के प्रयत्न से महेन्द्रकुमार पहुँचे लेकिन उन्हें वहाँ अपने प्राणों से हाथ धोने पड़े। उनकी द्वेषाग्नि ठण्डी पड़ गई।

5 निर्मला - 1925-1926

उर्दू में भी इसका नाम निर्मला ही है। सन् 1929 में लाहौर से यह प्रकाशित हुआ था। यह एक लघुकाय उपन्यास है। इसमें प्रेमचंद ने अनमेल विवाह की समस्या उठाई है। निर्मला में प्रेमचंद ने न केवल समस्या का चित्रण किया है बल्कि कुरीतियों का दुष्परिणाम दिखाया है। किन्तु उसका उपचार भी प्रस्तुत किया है। यह इसकी सबसी बड़ी विशेषता है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि प्रेमचंद का झुकाव जीवन के यथार्थ चित्रण की ओर होता जा रहा है। निर्मला में प्रेमचंद की यथार्थवादिता दिखाई देती हैं उन्होंने बड़े कौशल से घटनाओं को निर्मला के आसपास संजोया है और उसके जीवन की विषम व्यथा से प्रभावित दिखाया है।

कथानक

बाबू उदयभान के दो पुत्रियाँ थी, निर्मला और कृष्णा। निर्मला के विवाह की चिन्ता बाबूजी को सदा बनी रहती थी। आखिर बाबू भालचन्द्र सिन्हा के ज्येष्ठ पुत्र भुवनमोहन से विवाह तय हुआ। सिन्हा ने दहेज की बात भी न चलाई। उदयभान को इससे बड़ा सन्तोष हुआ। वह विवाह की तैयारियाँ करने लगे। उन्होंने निश्चय किया कि बारातियों का खूब अच्छी तरह से स्वागत करेंगे। एक दिन बाबू उदयभान और उनकी पत्नी कल्याणी में छोटी सी बात में कहा सुनी हो गई। बाबूजी गंगाजी की ओर चल दिए। सोचा कपड़े किनारे पर रख दूँगा। लोग सोचेगें कि आत्म हत्या कर ली। मैं चार पाँच दिन बाद मिर्जापुर से लौट आऊँगा। रास्ते में उन्हे बदमाश मतई मिला। वह कई बार सजा भुगत चुका था। उसने बाबूजी से कहा कि आप वचन दीजिए कि अब आप किसी को दण्ड नहीं दिलाइएगा। बात बढ़ जाने पर मतई ने बाबू उदयभान के सिर पर लाठी से प्रहार किया और बाबूजी का जीवनान्त हो गया। इसी के अनन्तर भालचन्द्र ने निर्मला से अपने पुत्र का विवाह करना नामंजूर कर दिया। आखिर निर्मला का विवाह वकील मुंशी तोताराम से हो गया। उनकी अवस्था चालीस के लगभग थी। उन्होंने निर्मला को प्रत्येक प्रकार से प्रसन्न रखने का प्रयत्न किया। निर्मला एक विचित्र संकोच के भार से दबी जाती थी। तोताराम की बहन रुक्मिणी भी निर्मला को कष्ट देती थी। निर्मला तोताराम के तीनों लड़कों मंशाराम, सियाराम और जियाराम को बहुत प्यार करती है। मंशाराम से उसे विशेष स्नेह था। वह उसे अंग्रेजी पढ़ाती है। तोताराम को यह बात बिल्कुल नापसन्द थी। वह चाहते थे की उनकी पत्नी केवल उन्हीं से घनिष्ठता रखे और इसके लिए वह प्रत्येक कृत्रिम- अकृत्रिम काम में लाते हैं। मंशाराम पर उन्हें इतना क्रोध आता है कि उसे छात्रालय में भेज देते हैं। मंशाराम को बहुत दुख होता है और वे बीमार हो जाते हैं, उन्हें अस्पताल में भर्ती कराया जाता है वहाँ उनका प्रणान्त हो जाता है। निर्मला के मन पर इस घटना से बड़ा धक्का लगता है और वह अनमनी सी रहने लगती है। इधर छोटे लड़के जियाराम, सियाराम भी पिता के हाथों से निकल जाते हैं। जियाराम तो इतना बिगड़

जाता है कि निर्मला के ही गहने चुराने लगता है और अन्त में आत्महत्या कर लेता है। सियाराम साधु होकर घर से भाग जाता है। तोताराम भी परेशान होकर चल देते हैं। निर्मला जीवन का भार ढोती रहती है। उसकी पहचान डॉक्टर भुवनमोहन की पत्नी सुधा से हो जाती है। इन्हीं डॉक्टर साहब से पहले निर्मला की शादी तय हुई थी। एक दिन डॉक्टर साहब ने निर्मला पर अपना प्रेम प्रकट किया, पर उसे यह सब अच्छा नहीं लगा। सुधा को जब यह बात ज्ञात हुई तब उसने अपने पति की भर्त्सना की। लज्जावश डॉक्टर भी आत्महत्या कर लेता है। निर्मला भी घुट-घुटकर मर जाती है और जब उसका शव बाहर निकाला जाता है, तभी मुंशी तोताराम दाह के लिए आते हैं।

विधवाओं के जीवन की करुण कहानी प्रेमचंद ने इस उपन्यास में प्रस्तुत की है।

6 -- कायाकल्प -- 1926

कायाकल्प ' पर्दए मजाज का हिन्दी रूपान्तर है। जो 1928 में लाजपत राय एण्ड संस - लाहौर से प्रकाशित हुआ था। इसमें प्रेमचंद ने सामाजिक, साम्प्रदायिक तथा राजनीतिक समस्याओं को उठाया है और उसका समाधान भी किया है।

कथानक: --

उपन्यास के आरंभ में ही चक्रधर नामक सुशिक्षित युवक का परिचय प्राप्त होता है। उसके आदर्श ऊँचे हैं और वह अपने पिता मुंशी वज्रधर की इच्छा के विरुद्ध देश और समाज की सेवा करता है। वह जगदीशपुर के दीवान ठाकुर हरिसेवकसिंह की कन्या मनोरमा को ट्युशन पढ़ाता है।

आगरा के वकील यशोदानंदन अपनी कन्या अहल्या के विवाह की बातचीत करने आए हैं। चक्रधर को उनके साथ आगरा जाना पड़ा। उसे अहल्या पसन्द आई। उसी समय आगरा में एक संप्रदायिक दंगा हो गया। चक्रधर ने अपनी अहिंसात्मक वीरता के परिचय से उस दंगे को रोका। उसी समय उसे पता चला कि अहल्या वकील यशोदानन्दन की पुत्री नहीं है। उन्हें वह एक मेले में मिली थी।

जगदीशपुर राज्य की विधवा रानी देवप्रिया का जीवन अत्यन्त विलासमय है। एक दिन अनायास ही एक राजकुमार आया और उसने रानी देवप्रिया को बताया कि वह उसके पूर्वजन्म का पति है। रानी उसकी अलौकिक बातों में आ गई और विशालसिंह को राज्य देकर उसके साथ चली गई।

राजा विशालसिंह की तीन पत्नियॉ थीं- रोहिणी, वसुमती और रामप्रिया। इन तीनों के स्वभाव भिन्न-भिन्न थे। रोहिणी कृष्ण की उपासक थी, वसुमती रामनवमी का उत्सव मनाती तो रामप्रिया पूजन को पाखंड कहती थी। रोहिणी सभी रानियों में सबसे तेज थी। एक दिन जब वह रूठकर चली गई तो चक्रधर

उसको मनाकर ले आए। मुंशी वज्रधर और ठाकुर हरसेवकसिंह भी राजा के दरबार में अधिक आने जाने लगे, लेकिन चक्रधर इतना नहीं जाता था।

दूसरी तरफ चक्रधर से मुंशीजी को ज्ञात हुआ कि अहल्या यशोदनन्दन की वास्तविक पुत्री नहीं है और इसी कारण से उसने उसे अपनाने से इन्कार कर दिया। यहॉ मनोरमा और चक्रधर के बीच घनिष्टता बढ़ती गई। मनोरमा ने कहा कि मैं मरकर भी आपको भूल नही सकती।

राजा विशालसिंह के तिलकोत्सव की तैयारियॉ बड़े जोर शोर से होने लगी। राजा साहब असामियों पर किसी तरह का अत्याचार नहीं करते थे पर मुंशी वज्रधर और दीवान ठाकुर हरिसेवक ने प्रजा के पास से जबर्दस्ती पैसे वसूल किए। चक्रधर ने राजासाहब से शिकायत की लेकिन उसका कुछ परिणाम न निकला। तिलकोत्सव के दिन दीवान ने चमारों को गालियॉ दी और बूढ़े चौधरी को पीट दिया। स्थिति भयानक हो गई। उत्सव बिगड़ने लगा। अंग्रेजों ने खूब गोलियॉ चलाई। चक्रधर और राजा साहब को चोट आ गई। चक्रधर ने मजदूरों और किसानों को शांत किया। अंग्रेजो ने उसे उस भीड़ का नेता समझकर गिरफ्तार कर लिया। मनोरमा उन्हें छुड़ाने के लिए जुट गई।

चक्रधर ने पिता के अनेक अनुरोध पर भी क्षमा मॉगना स्वीकार न किया। राजासाहब ने मिस्टर जिम से अनुरोध किया कि वह चक्रधर को छोड़ दे लेकिन वह नहीं माना, बाद में जब चक्रधर ने उसे मारा तब उसने चक्रधर को छोड़ने की हामी भरी लेकिन चक्रधर जेल से बाहर निकलने के लिए तैयार न था। मनोरमा के भाई गुरुसेवक की अदालत में यह मुकदमा पहूॅचा उन्होंने बहन के कहने पर चक्रधर को बरी कर दिया।

राजा और मनोरमा में घनिष्ठता बढ़ती गई और दोनों ने विवाह करने को सोचा पहले दीवानजी की पत्नी इस बात से इन्कार करती है लेकिन जब उनकी बेटी ही इस बात के लिए राजी है तब वे कुछ नहीं कर पाती। और दोनों का विवाह हो जाता है। मनोरमा राजा साहब के नाम पर राज्य करने लगती है।

चक्रधर को यद्यपि गुरुसेवक ने बरी कर दिया था लेकिन पुराने अभियोग की वजह से उसे आगरा जेल भेज दिया जाता है। वहॉ उसकी अहल्या तथा यशोदानन्दन से भेंट होती है। उन्ही से उन्हे मनोरमा और राजा साहब के विवाह की बात का पता चलती है। वह मनोरमा के लिए कई गलत ख्याल बना देता है लेकिन मनोरमा एक दिन स्वयं उनसे मिलने आती है और सारी चीजें बताती है। तभी चक्रधर को अपनी गलती महसूस होती है।

जब चक्रधर जेल से छूटता है तब मनोरमा उसका स्वागत करती है। पर उसी समय आगरा में साम्प्रदायिक दंगा हो जाता है, उसमे बाबू यशोदानन्दन की हत्या हो जाती है और अहल्या का अपहरण हो

जाता है। चक्रधर पिता की आज्ञा के विरुद्ध आगरा जाता है और अहल्या की तलाश करने लगता है। ख्वाजा महमूद यशोदानन्दन की हत्या के बाद पश्चाताप करने लगते हैं और अहल्या को ढूँढ़ने लगते है। काफी मुसीबत के बाद उन्हें अहल्या मिल जाती है। चक्रधर किसी विरोध की परवाह किए बिना अहल्या से विवाह कर लेता है और जब वह घर आता है तब मुंशीजी, मनोरमा आदि सभी उनका स्वागत करते हैं।

राजा विशालसिंह मनोरमा के साथ प्रसन्न थे। उन्होंने जगदीशपुर इलाके का सारा काम ठाकुर गुरुसेवक सिंह को सौंप दिया था। पहली तीनों रानियॉ भी वहीं रहती थी। गुरुसेवक सिंह को रामप्रिया के विषय में थोड़ी गलतफहमी थी। उन्होंने प्रेम परीक्षा के लिए ज्वर को आमंत्रित किया, जहॉं राजासाहब, मनोरमा, ठाकुर हरिसेवक आदि भी थे। लेकिन इस अवसर पर मनोरमा को रोहिणी ने कटुवचन कहे, जिससे उसे दुख हुआ। राजा ने उनको शांत किया, पर मनोरमा वहीं रुक गई।

कुछ दिन तो अच्छी तरह बीते पर मुंशी बहू के हाथ का खाना नहीं खाते थे। जिससे चक्रधर ने घर छोड़ने का फैसला किया। मुंशीजी मनोरमा के पास गये वे चाहते थे कि मनोरमा चक्रधर को रोके, मनोरमा ने कोशिश भी की, लेकिन वह नहीं माना। उसने मनोरमा के अनुरोध पर पॉच हजार रूपये स्वीकार कर लिया। प्रयाग में लेखादि लिखकर वह अपनी जीविका चलाने लगा। अहल्या भी उसका साथ देती थी तभी एकाएक समाचार मिला कि मनोरमा बीमार है, इसलिए, अहल्या और मन्नू जगदीशपुर चले गये। चक्रधर के आने पर मनोरमा कुछ ही क्षणों में स्वस्थ हो गई। उसी समय राजा साहब को यह भी पता चला कि अहल्या उसकी बेटी है, जो त्रिवेणी के मेले में खो गई थी। राजा साहब बहुत खुश हुए। अब चक्रधर तथा उसका पुत्र शंखधर वहीं रहने लगे। अहल्या को राज्य के सुख वैभव में आनंद आ रहा था लेकिन चक्रधर को जनसेवा मंजूर थी। उन्होंने अहल्या तथा मनोरमा से बाहर जाने की इच्छा प्रकट की और एक दिन वह घर छोड़कर चला भी जाता है। पॉच वर्षों तक चक्रधर का कोई पता नहीं चला। इधर शंखधर अब बड़ा होता गया और वह पिता के बारे में पूँछने लगा। एक दिन वह भी पिता की खोज में घर छोड़कर चला गया। कई वन, पर्वत, गॉव, शहर ढूँढ़ने लगा सभी धामों में जाकर आया पर पिता का कोई पता न चला। एक दिन वह एक गॉव में पहुँचा तब एक वृद्ध ने कहा कि थोड़े दिन पहले ऐसे ही मुख वाला एक साधु यहॉ आया था। शंखधर उन्हें खोजने निकल पड़ा। इसी बीच हरिसेवक की मृत्यु हो गई औंर रोहिणी ने आत्महत्या कर ली। शंखधर को साईंगंज के मन्दिर में उसके पिता चक्रधर मिले जो महात्मा भगवानदास के नाम से प्रसिद्ध थे। यहॉ पर अहल्या पति और पुत्र के वियोग से व्यथित थी। शंखधर ने अपने पिता को पहले अपना सही परिचय नहीं दिया लेकिन बाद में उसने पिता को सच बताया। चक्रधर अब भी अपना रहस्य छिपाये हुए था। शंखधर सब कुछ जानकर भी कुछ नहीं कर पा रहा था। उसने मॉ को पत्र लिखा।

वह चाहता था कि माँ और वह दोनों मिलकर पिता को घर ले जाय पर माँ का पत्र काफी दिनों तक नहीं आया। बाद में पत्र आया, जिसमें लिखा था कि अहल्या एक महीने से रोग शय्या पर पड़ी है। वह उन्हें देखने चल पड़ा।

कथानक की मुख्य धारा रानी देवप्रिया राज्य छोड़कर राजा महेन्द्र के साथ एक गुफा में रहती थी। वहाँ महेन्द्र उन्हें अलौकिक बातें बताता था। महेन्द्र ने सात वर्षों के अनवरत परिश्रम से वायुयान बनाया था, जिसमें बिठाकर वह देवप्रिया को ले जाता है। पर वह बीच में ही वायुयान से विलीन हो जाती है। इधर शंखधर आगरा जाने के बजाय हर्षपुर पर ही उतर जाता है। वह राजभवन के भीतर चल पड़ा। देवप्रिया ही रानी कमला के रूप में वहाँ रह रहीं थी। उन्हें ध्यान आया कि आज से बीस वर्ष पूर्व प्राणाधार चले गये थे, कहीं वह ही तो नवीन स्वरूप धरकर नहीं चले आए ? शंखधर ने राजा महेन्द्र के साथ होने वाले समस्त क्रियाकलापों की चर्चा की। रानी कमला और शंखधर का मिलन भी अद्‌भुत था।

राज्य की दशा खराब होती गई। राजा विशालसिंह अब विलासिता में डूब गये थे। उन्होंने दूसरा विवाह करने का निश्चय किया। बारात निकलने के अवसर पर शंखधर आ पहुँचा। उसके साथ रानी कमला भी थी। शंखधर ने बताया कि वह दक्षिण के एक राजा की कुमारी है। अहल्या अपने पुत्र को पाकर बहुत खुश हुई। राजा विशालसिंह अब पूजा अर्चना में डूब गये। मनोरमा से उन्होंने माफी माँगी। शंखधर ने व्रजधर से अपनी सारी यात्रा के बारे में बताया और यह भी बताया कि रानी कमला ही देवप्रिया है। मनोरमा से राजा विशालसिंह को पता चला कि रानी कमला ही देवप्रिया हे। उन्होंने मुंशीजी से भी कहा कि अब कोई विपत्ति आने वाली है। शंखधर भी रानी कमला से दूर रहने लगी। एक रात रानी कमला पर देवप्रिया हावी हो गई और शंखधर के प्राणपखेरू उड़ गये। चक्रधर का मन शंखधर के बगैर नहीं लगता था। वे भी काशी चले गये। शंखधर को मृत देखकर विशालसिंह भी मर गये। अहल्या मनोरमा मुंशीजी आदि चक्रधर को देखकर चकित हो गये। अहल्या ने मात्र उन्हें देखकर ही आँखें मूँद ली।

7 -- प्रतिज्ञा -- 1927

प्रेमचन्द ने एक सुधारवादी दृष्टिकोण रखा है। प्रतिज्ञा उपन्यास ' बेबा ' का हिन्दी रूपान्तर है। जो 1905-06 में प्रकाशित हुआ था। लेखक ने इसमें विधवाओं और अछूतों की समस्या को लिया है। इन सामाजिक प्रश्नों पर विचार करते हुए यह उनका आरम्भिक उपन्यास है।

कथानक

उपन्यास की कथा छोटी है। अमृतराय तथा दाननाथ बड़े घनिष्ट मित्र हैं। प्रेमा नामक युवती से वे दोनो ही प्रेम करते हैं। प्रेमा रिश्ते में अमृतराय की साली लगती है। अपनी बड़ी बहन की मृत्यु के पश्चात उसने निश्चय किया कि वह अमृतराय की ही जीवन संगिनी बनेगी। दाननाथ के हृदय में भी प्रेमा के लिए स्नेह है किन्तु वह विवश हो जाता है। एक दिन काशी के मन्दिर में आर्य मन्दिर में पंडित अमरनाथ का व्याख्यान सुनकर अमृतराय पर विचित्र प्रक्रिया होती है। वह विवाह करने का विचार त्याग देता है। विवश होकर लाला बदरीप्रसाद ने प्रेमा का विवाह दाननाथ से कर दिया। इधर अमृतराय ने विधवाश्रम खोल दिया और विधवाओं की सेवा में अपना जीवन व्यतीत करने लगा। प्रेमा का भाई कमलाप्रसाद दुराचारी प्रवृत्ति का था। उसकी पत्नी सुमित्रा एक सुशीला नारी है। प्रेमा के पड़ोस में ही पूर्णा रहती है। उसका पति होली के दिन डूबकर मर जाता है। लाला बदरीप्रसाद विधवा पूर्णा को अपने घर पर आश्रय देते हैं। कमला प्रसाद उसे भी अपनी वासना का शिकार बनाना चाहता है। अमृतराय पूर्णा को गिरने से रोकता है और उसकी रक्षा करता है। एक दिन कमला पूर्णा के प्रति अनाचार करने को आतुर हो उठा, तभी पूर्णा ने उसके सिर पर कुर्सी दे मारी। उसी के अनन्तर पूर्णा अमृतराय के विधवाश्रम में रहने लगती है।

घटना पूर्ण रोमांचक और चमत्कारी कथानक में प्रेमचंद ने विधवाओं की समस्या पर हल्का सा प्रकाश डाला है उसमें सामाजिक पक्ष गौण और घटना वैचित्र्य अधिक है। उपन्यास एक आरम्भिक प्रयोग की भॉति प्रतीत होता है। जिसके सहारे लेखक वृहत कृतियों तक पहुॅचने में प्रयत्नशील है।

8 -- गबन -- 1931

उर्दू में इसका यही नाम है। जो 1930 में लाहौर से प्रकाशित हुआ था। यह उपन्यास मध्यम वर्ग के जीवन को लेकर लिखा गया है।

कथानक :--

दयानाथ जो कि एक कचहरी में नौकर है। रिश्वत लेने की सुविधा होने पर भी नाजायज कमाई को हराम समझता है। लेकिन जब बेटे के विवाह का अवसर आया तो अपनी हैसियत से ज्यादा खर्च करता है और कर्ज से लद जाता है।

कर्ज से लद जाने के बावजूद पुत्रवधू संतुष्ट नहीं होती। वह बचपन से स्वप्न देखती आई थी कि जब उसका विवाह होगा तो वह चन्द्रहार पहनेगी। लेकिन दयानाथ विवाह में और आभूषण तो ले गये लेकिन वह चन्द्रहार न बनवा सके। उसे संतुष्ट करने के लिए उसके पति रमानाथ ने बड़ी डींगे मारी और अपनी हैसियत को बढ़ा चढ़ाकर कहा। इधर विवाह के उपरान्त कर्ज वालों के तकादे बढ़ने लगे। रमानाथ के पिता समझते थे कि विवाह में बहुत सारा नकद रूपया मिलेगा जिससे वे बारात से लौटने पर कर्ज चुका देंगे। रूपया मिला जरूर, लेकिन वह भी ठाट-बाट में खर्च हो गया। अब कर्ज चुकाने के लिए दयानाथ ने रमानाथ से सलाह ली और तय किया कि कुछ आभूषण सराफे को लौटा दिए जाएं। रमानाथ जालपा को वस्तु स्थिति से परिचित कराने और आभूषण मॉगने के बजाय रात को उसके गहनों का डिब्बा उठा ले आता है और फिर अपने आप ही अपने घर में चोरी हो जाने का ढिंढोरा पीटता है। जालपा गहने चले जाने से बहुत दुखी होती है।

रमानाथ को म्युनिसपालिटी में चुंगी की नौकरी मिल जाती है। उसे तीस रुपये मासिक वेतन मिलता है और उसके अतिरिक्त कुछ ऊपर की आमदनी हो जाती है। वह जालपा को खुश करने के लिए उसके मनपसंद का आभूषण खरीदता है, जिससे उसके जिम्मे सराफ का 600 रूपये कर्ज हो जाता है। जालपा का परिचय हाईकोर्ट के एडवोकेट की पत्नी रतन से हो जाता है। रतन को जालपा के कंगन बड़े पसंद आते हैं। वह रमानाथ को ऐसे कंगन लाने के लिए 600 रूपये देती है। रमानाथ जब ये पैसे सराफ को देता है तो वह सारे पैसे उधारी के जमा करके दूसरे कंगन देने से मना कर देता है। रतन बार -बार कंगन मॉगती है तो वह बनने में देर लगेगी ऐसा बहाना करता है। आखिरकार जब वह पैसे मॉगती है तो वह चुंगी के रूपये जमा करने के बजाय उसे दे देता है अब उसे चिन्ता इस बात की होती है कि वह रूपया दूसरे दिन सुबह म्युनिसपालिटी में जमा नहीं कर पाएगा तो वह गबन के आरोप में जेल जाएगा और मुकदमा चलेगा। वह एक पत्र में जालपा को यह सब लिख तो देता है पर पत्र उसके हाथ नहीं लगे ऐसी कामना करता है। लेकिन वह पत्र जालपा पढ़ लेती है, रमानाथ मारे शरम के वहॉ से भाग जाता है और वहॉ जालपा अपने कंगन बेचकर म्युनिसपालिटी की चुंगी भर देती है।

रमानाथ को गाड़ी में एक बूढ़े खटिक देवीदीन से भेंट हो जाती है। वे कलकत्ता पहुॅचकर उनके घर ही रहता बूढ़े खटिक की सब्जी की दुकान है जिस पर प्राय: उसकी बुड्ढी पत्नी काम करती है। बूढ़े का

प्रेम देखकर रमानाथ अपनी आप बीती कहता है। रमानाथ अपने आप को ब्राह्मण बताता है और पुलिस से छिप-छिपकर सावधानी से रहता है। लेकिन एक दिन जब वह ड्रामा देखकर लौट रहा होता है तब पुलिस दिखने पर वह उनसे छिपता है, पुलिस उसका छिपना देखकर उसे पकड़ लेती है और उसे थाने ले जाती है। तब वह पुलिस को बताता है कि उसने म्युनिसपालिटी में गबन किया है। जब पुलिस इलाहाबाद फोन करके गबन के बारे में पूँछती है तो वहॉ से पता चलता है कि रमानाथ नामक व्यक्ति यहॉ काम करता था लेकिन उसने कोई गबन नहीं किया है। पुलिस को वैसे ही एक व्यक्ति की जरूरत होती है, जो क्रान्तिकारियों के खिलाफ झूठा बयान दे। रमानाथ को वे उसके लिए तैयार करते हैं। पहले तो रमानाथ मना करता है पर बाद में जेल जाने के डर से वह मान जाता है। उसकी गवाही से काफी देशभक्तों को जेल होती है। देवीनाथ उससे घृणा करने लगता है। रमानाथ को खुद भी ग्लानि होती है।

रमानाथ की गिरफ्तारी से पहले जालपा रतन की मदद से शतरंज का एक नक्शा समाचार पत्रों में प्रकाशित करती है जिसके भरने पर उसने 50 रूपये का ईनाम रखती है। जिससे उन लोगों को पता चल जाता है कि रमानाथ कलकत्ता में है। जालपा उसे ढूँढ़ने वहॉ जाती है और उसी खटिक के घर ठहरती है जहॉ रमानाथ पहले रुका हुआ था। तब वह बहुत दु:खी होती है कि वह झूठे मुकदमे में मुखबिर बन गया। वह पुलिस के एक कुचक्र में फस गया है जहॉ से उसका निकलना मुश्किल मालूम पड़ता है।

इसी बीच रतना का बूढ़ा पति बीमार हो जाता है और वह उनका इलाज करवाने कलकत्ता आ जाती है। एक बार जब पुलिस द्वारा मिले हुए गहने वह जालपा को देती है तो वह उसे ठुकरा देती है और उससे घृणा करती है। वह एक क्रान्तिकारी की बूढ़ी मॉ की सेवा करती है।

उपन्यास का अंत इस तरह होता है कि एक वेश्या जोहरा की सहायता से , जो रमानाथ का दिल बहलाने के लिए पुलिस द्वारा लाई गई थी, वह इस कुचक्र से निकलने में सफल हो जाता है। वह हाई कोर्ट के जज से मिलकर सारा कच्चा चिट्ठा कह देता है। मुकदमा हाईकोर्ट में फिर से सुना जाता है और रमानाथ के बयान बदलने पर क्रान्तिकारी रिहा कर दिए जाते हैं। रमानाथ, जालपा और उसके पिता गंगा के तट पर खेती करने लगते हैं। जोहरा भी उनके साथ रहने लगती है, पर एक दिन गंगा स्नान करते समय गंगा की तेज धारा में बह जाती है। यहीं पर उपन्यास समाप्त हो जाता है।

9 -- कर्मभूमि -- 1932

कर्मभूमि ' मैदाने अमल ' का हिन्दी रूपान्तर है। जिसका प्रकाशन 1932 में जामे मिलिया दिल्ली से हुआ। इस उपन्यास में प्रेमचन्द ने बड़े व्यापकता के साथ राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक

प्रवृत्तियो का चित्रण किया है, जो पग-पग पर भारतीय समाज और उनके जीवन को प्रभावित कर रही थी। उपन्यासकार ने आंदोलनों का राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक आधार बड़ी कुशलता से व्यक्त किया है। समाजशास्त्रीय दृष्टि से ही नहीं कला की दृष्टि से भी कर्मभूमि प्रेमचन्द की विशिष्ट कृति है।

कथानक

समरकांत काशी के सबसे बड़े साहूकार हैं। उनके पुत्र का नाम अमरकांत तथा पुत्री का नाम नैना है। अमरकांत का विवाह लखनऊ के एक धनी परिवार में हुआ था। उसकी पत्नी भोग विलास को ही जीवन का सबसे बड़ा धर्म मानती है। अमरकांत को सादा जीवन पसंद है इसलिए पति-पत्नी के बीच अच्छे संबंध नहीं रहते थे। अमरकांत अपने भोग विलासी पिता से भी स्नेह संबंध नहीं रख पाता था क्योंकि उसके पिता मात्र धन के पुजारी थे। इसलिए पिता पुत्र मे झगड़े भी होते थे।

मैट्रिक होने के बाद अमरकांत एक व्यावसायिक के यहॉ पत्र व्यवहार का काम करते थे। अमरकांत पिता के पास से पैसे मॉगना नहीं चाहता था। इसलिए उसने यह कार्य शुरु किया जो समरकांत तथा अमरकांत की पत्नी सुखदा को पसंद न था। वे लोग चाहते थे कि वह उनके व्यवसाय को संभाले लेकिन सूदखोरी की जमींदारी का व्यवसाय नहीं करना चाहता था। सुखदा के कहने पर वह नौकरी तो छोड़ देता है पर पिता से पैसे नहीं मॉगता है। उसी समय काशी की यात्रा करने सुखदा की मां रेणुका देवी आती है। वह यह जानकर दु:खी होती है कि उसकी बेटी और जमाई के बीच संबंध अच्छे नहीं हैं। लेकिन उसकी बेटी मॉ बनने वाली है इस बात से वह खुश होती है। वे सुखदा और अमरकांत के बीच नजदीकियां लाती है। अब अमर को सुखदा के भोग विलास से कोई डर नहीं रह जाता है।

अमरकांत और उनके मित्र सलीम और डॉ. शान्तिकुमार गॉवों की आर्थिक दशा का ज्ञान प्राप्त करने निकले। एक दिन गॉव से आते समय उन्होंने देखा कि तीन गोरे एक युवती पर बलात्कार कर रहे हैं। सलीम ने हॉकी से दो गोरे को धराशायी कर दिया लेकिन तीसरे गोरे ने शान्तिकुमार को गोली मारी जो उनकी जॉघ में लगी और वे घायल हो गये। गॉव वालों ने तीसरे गोरे को भी न छोडा वे लोग उसको भी मार गिराए। बलात्कारी युवती लज्जा के मारे वहॉ से चली गई। एक बैलगाड़ी में शान्तिकुमार और गोरे को लेकर छात्र मण्डली लौटी। गोरों के खिलाफ रपट लिखाई गई और शन्तिकुमार एक महीने तक अस्पताल में रहे। यह घटना अमरकांत के जहन् में बैठ गई। उनका मानना था कि हमारे देश के लोगों की कमजोरियों की वजह से बाहर के लोग हम पर जुल्म करते हैं। उन्होंने अपना दिल का गुबार एक समारोह के भाषण में निकाल दिया। अंग्रजों ने इस भाषण की वजह से समरकांत को चेतावनी दी। समरकांत ने सारा गुस्सा सुखदा पर निकाला। सुखदा को पराधीनता से कोई लेना नहीं था वह केवल अपने पति की रक्षा चाहती थी

इसलिए उसने अमरकांत को सम्मेलनों में जाने से मना किया। अमरकांत गर्भवती स्त्री को चिंता में डालना नहीं चाहता था इसलिए उसने उसे हॉ कह दिया तथा सुखदा को खुश करने के लिए कभी-कभी दुकान पर भी जाता था।

उसकी दुकान में एक दो गोरे तथा एक मेम सोने की जंजीर बेचने आए। वे जब लौट रहे तो एक भिखारिन ने चाकू से उन पर वार किया। वे दो गोरे धराशायी हो गये। वह भिखारिन वह स्त्री थी जिसका उन दोनों ने बलात्कार किया था। उसका नाम मुन्नी था। उसने पुलिस में अपना गुनाह कबूल करके सभी बातें बताई। इस बयान के बाद जन मनोवृत्ति मुन्नी के साथ थी। रेणुका ने उसका केश लिया, जिसमें शान्तिकुमार, अमर, तथा सुखदा ने साथ दिया। मानसिक अस्थिरता को साबित करके मुन्नी को छुड़ा लिया गया। मुन्नी का पति उसे लेने आया लेकिन कलंकित होने के कारण मुन्नी नगर छोड़कर चली गई। इस तरफ सुखदा को पुत्र हुआ। इधर सुखदा के विलासी होने की वजह से अमर उससे दूर हो गया और एक मुसलमान की लड़की सकीना की तरफ आकृष्ट हो गया। लेकिन जब सकीना की नानी को इस बात की भनक पड़ी तो अमर को बड़ी खरी खोटी सुनाई। अमर यह सह न सका। सलीम और समरकांत के समझाने के बाद भी वह घर न लौटा और हरिद्वार के निकट चमारों के गांव में जा पहुँचा। उसके उद्योग से गॉव का जीवन समुन्नत हो गया और दुर्व्यसनों से गॉव वालों को मुक्ति मिल गई।

सुखदा को अपने पति से लेश मात्र भी प्रेम नहीं था। वह सकीना से भी लेशमात्र गुस्सा नहीं करती थी लेकिन उसको एहसास हो रहा था कि उसके पति ने उसे प्रेम नहीं किया। सकीना का यह मानना था कि अमर भोग विलास के भूखे नहीं थे उनकी जो सेवा करता उसी के वे होकर रहते। धीरे-धीरे सुखदा को अपनी वृत्तियों का ज्ञान हुआ। उसी समय एक और घटना घटित हुई। समरकांत और मंदिर के कट्टर पंडा पुजारी अछूतों को मंदिर प्रवेश नहीं करने दे रहे थ। एक दिन अछूतों की एक भीड़ मंदिर में आने के लिय विवश हो उठी। पुजारी ने उनको पीट डाला। उसमें लोग उनका विरोध करने लगे। शांतिकुमार घायल हो गये। सुखदा को धर्म रक्षा के लिये रक्तपात पर विश्वास न था, वह लोगों के पक्ष पर चली गई। अधिकारियों का आसन डोल गया सुखदा की विजय हुई। मन्दिर सबके लिए खुल गया। सुखदा नगर मंत्री बन गई। नगर की सार्वजनिक संस्थाएं उसके सहयोग से सक्रिय हो उठी। उसमें अब परिवर्तन आ चुका था। शांतिकुमार को चोटों के कारण छ महीने तक आराम करना पड़ा अब शान्तिकुमार तथा सुखदा दोनो लोगों की सेवा में जुट गये। उन्होंने गरीब व्यक्तियों की सेवा करने के लिए म्युनिसपालिटी से जमीन मॉगी लेकिन उन लोगों ने इन्कार कर दिया। शान्तिकुमार जुलूस निकालना चाहते थे लेकिन सुखदा ने जगह-जगह पर हड़ताल करवा दी, जिससे उसके नाम का वारन्ट निकल गया। उसका लेशमात्र भी उसे अफसोस न था।

उसे विश्वास था कि आन्दोलन सफल होगा। उसने जमानत ली और अपने पति की राह पर जेल गई। उसका प्रथम बार अपने पति से अंतिम सामंजस्य हुआ। उसी समय सलीम सिविल की परीक्षा पास करके अमर के इलाके में पहुॅचा उसने अमर से कहा कि अगर उसे एतराज न हो तो वह सकीना करना चाहता है। अमर सुखदा से नाराज होकर सकीना की तरफ आकृष्ट हुआ था लेकिन अब सुखदा के परिवर्तन ने उसे परिवर्तित कर दिया उसने खुशी-खुशी सलीम को शादी करने के लिए कहा।

इस इलाके का जमीदार एक महन्त था, जो बड़ा अधर्मी और शोषक था। वह कृषकों से लगान वसूली करना चाहता था। लेकिन कृषकों की हालत बुरी थी। लगान वसूली के लिए उसने कई तरीके अपनाए जिससे किसानों में रोष उत्पन्न हुआ। किसानों का सरदार अमरकांत था। उसकी गिरफ्तारी का वोरन्ट सलीम को आया। सलीम ने अपना कर्तव्य निभाया पर उनकी दोस्ती में कोई अंतर न आया। अमरकांत की गिरफ्तारी की बात समरकांत को मिली तो वह वहॉ पहुॅचा और समरकांत के कहने पर सलीम एक बार फिर से गॉव के किसानों का मुआयना करता है। तब उसे पता चलता है कि किसानों की स्थिति वास्तव में अच्छी नहीं है। वह एक रिपोर्ट अंग्रेज सरकार को भेजता है। एक हप्ते बाद उसे विद्रोही बताकर उसे नौकरी से अलग कर दिया जाता है। अब वह जानवरों की कुर्की होनी है जिसका वह नेता बनता है। जब वह इस मामले में सरकारी अफसर से बात करता है तो वहॉ बात और बिगड़ जाती है। सरकारी अफसर उस पर हंटर बरसाते है और उसे बंदी बना लिया जाता है।

नगर में निर्धन प्राणियों की गृह योजना के लिए अभी भी म्युनिसपालिटी भूमि नहीं दे रही थी। अब शांतिकुमार को भी बंदी बना दिया जाता है और मोरचा नैना ने संभाला। नैना का पति मनीराम यह नहीं चाहता था इसलिए उसने नैना को पीछे हटने को कहा, नैना के मना करने पर उसने नैना को गोली मार दी।

नैना को लेकर सब लोग म्युनिसपालिटी पहुॅचे। नैना का बलिदान काम आया। सरकार जमीन देने के लिए तैयार हो गई और सुखदा को रिहा कर दिया गया। इधर लगान आन्दोलन का मोरचा सकीना ने उठाया और उसे भी बन्दी बनाया गया। कारावास में सकीना, सलीम, अमरकांत तथा सुखदा की भेंट हुई। अमर अपने करतूतों की माफी सुखदा से मॉगता है लेकिन सुखदा को पति के वियोग से सही नारीत्व मिला था। तभी गवर्नर का हुक्म आया और सभी बन्दियों को छोड़ दिया गया और एक कमेटी बनाने का निश्चय किया गया। सलीम और सकीना एक हुए और सलीम के पिता ने यह रिश्ता कुबूल किया। अमरकांत और सुखदा भी एक हो गये। वे भी साथ में रहने लगे, समरकांत भी उनके साथ आ गया। अब सभी ने हरिद्वार के निकटस्थ उस गॉव में जाने का निश्चय किया जो कभी आन्दोलन का केन्द्र रह चुका था।

10-- गोदान -- 1936

गोदान ' गऊदान ' का हिन्दी रूपान्तर है। जो 1938 में सरस्वती प्रेस द्वारा प्रकाशित हुआ था। गोदान प्रेमचन्द की अन्तिम और अनन्यतम कृति है। इस उपन्यास में लेखक ने अपने सम्पूर्ण चिन्तन की अभिव्यक्ति एवं अनुभवों को एक सूत्र में बांधने का प्रयत्न किया है।

कथानक

उपन्यास की कथा ग्रामीण वातावरण से ही आरम्भ होती है। किसान होरीराम और उसकी स्त्री धनिया की बातचीत से पता चलता है कि होरी को रायसाहब से मिलने जाना है। होरी पॉच बीघे जमीन का मालिक है। वह रायसाहब से मिलने जाता है तब उसे भोला मिलता है, जो एक विधुर ग्वाला है। उसके पास इतनी गायें देखकर उसने गाय खरीदने का निश्चय किया। इसलिए उसने भोला से उसका विवाह करवाने का वचन दिया। भोला के कहने पर वह उस दिन गाय ले गया। रायसाहब के यहॉ से लौटकर होरी उसे शुभ समाचार सुनाता है। होरी के एक पुत्र गोबर तथा दो पुत्रियॉ सोना और रूपा हैं एक दिन होरी के आमंत्रण पर भोला उसके यहॉ भूसा लेने आता है। घर के लोग स्वागत करते हैं। गोबर उनके घर भूसा रख आता है। दूसरे दिन वह गाय लेने के लिए जाता है वहॉ उसका मिलन भोला की विधवा पुत्री झुनिया से हो जाता है। और वे लोग एक दूसरे के प्रेम में बॅध जाते हैं। गोबर घर गाय लेकर आता है। पूरे गॉव में यह बात फैल जाती है और वे लोग उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं। उसी समय आसाढ़ का पहला दौंगरा गिरता है और सभी किसानों को खेत में जाने की धुन सवार होती है। जमींदार अमरपाल सिंह ने आदेश दिया कि जो पहले बेगार नही देगा वह खेत जोतने नहीं आएगा। किसानों के सम्मुख एक बड़ी समस्या आ गई। होरी पर पहले से काफी ऋण था। वह झींगुर, दातादीन, दुलारी सभी का कर्जदार था। अब वह और कर्ज नहीं लेना चाहता था इसलिए उसने घरवालों के सामने गाय को बेच देने का प्रस्ताव रखा। सबने पहले तो इनकार कर दिया लेकिन धनिया होरी की विपत्ति समझ गई और उसने कहा कि जब बच्चे सो जाएं तो उसे रात में ही बेच देना।

उसी रात होरी अपने मझले भाई शोभा से मिलने गया तो उसने द्वार पर हीरा को खड़ा देखा। होरी हीरा के प्रेम से खुश नहीं है। 11 बजे जब होरी शोभा के घर से लौटा तो गोबर होरी को आकर कह रहा था कि बाहर गाय तड़प रही है। बाहर जाकर पता चला कि गाय को किसी ने विष दे दिया है। प्रात: काल तक गाय के प्राण पखेरू उड़ जाते हैं। रात को ही होरी ने धनिया को बता दिया कि हीरा गाय के पास था। धनिया को पता चल गया कि गाय को विष हीरा ने ही दिया है। धनिया गुस्सा हो गई। धनिया गॉव में ढिंढोरा पीटे इसलिए वह धनिया को चुप कराने के लिए उसे मारता-पीटता है। पुलिस आती है

और हीरा के घर की तलाशी करती है। होरी से यह नहीं सहा जाता है। इसलिए वह अपनी मरजाद बचाने के लिए पटेश्वरी से तीस रूपये लेकर दरोगा को दे देता है। धनिया पैसा दरोगा के हाथों से नीचे गिराती हे और अपने दिल की भड़ास निकालती है। अन्त में दातादीन नोखेराम पटेश्वरी और झींगुरसिंह से 50 रूपये वसूल करता है ।

इधर गोबर और धनिया का संबंध बढ़ता गया। झुनिया एक दिन होरी के घर आ गई। धनिया पहले तो गुस्सा हुई पर बाद में उसे गर्भवती पाकर उसे अपना लिया। गॉव भर में उसका विरोध हुआ तब धनिया ने कहा कि अगर दातादीन का लड़का मातादीन एक चमारिन को घर ला सकता है तो मैं क्यों नहीं ? लेकिन गोबर कायरों की भॅति वहॉ से भाग निकला। होरी की हालत दिन-ब-दिन बिगड़ती गई, खेत में अनाज अच्छा हुआ तो उसे लगा कि घर में खाने के लिए कुछ लाभ होगा बच्चे भूखे नहीं मरेंगें, पर पंचायत ने दूसरी बिरादरी की लड़की को बहू बनाने की वजह से उस पर 100 रूपये तथा 30 मन अनाज का जुर्माना लगाया। उसी दिन झुनिया को बेटा हुआ। झुनिया ने रो-धोकर डेढ़-दो मन अनाज घर रख दिया। होरी ने अपना मकान 80 रूपये में झिंगुरीसिंह के हाथों गिरवी रखवा दिया।

गोबर घर से भागकर अनिश्चित राह पर चल पड़ा। रास्ते में कोदई नामक एक व्यक्ति से उसकी भेंट हो गई। गॉव के मजदूरों के साथ आकर अमीनाबाद में उसे मजदूर का काम मिला। वह 15 रूपये का नौकर हो गया। इधर होरी की हालत दिन-प्रतिदिन बिगड़ती जा रही थी। गॉव के महाजनों ने उसका खून चूस लिया। उसके घर में खाने के लिए अनाज भी न था। शोभा ने उनको अनाज दिया। अब होरी शोभा के खेत भी जोतता था। इधर भोला अपने पैसे न मिलने पर होरी के बैल छुड़ा ले जाता है। दातादीन आदि उसे रोकते हैं लेकिन होरी उसे जाने देता है। होरी की हालत दिन-ब-दिन बिगड़ती जाती है। अब दातादीन ने आधे साझे पर उसके खेत जोते। होरी को अब अपनी ऊख की आशा थी लेकिन ऊख के भी 120 रूपये में से झिंगुरी सिंह उसे 25 रूपये ही देता है। जो नोखेराम ले लेता है। होरी अब किसान से मजदूर बन गया है। धनिया, रूपा, सोना सब अब मजदूरी करने जातें हैं, तभी एक दिन होरी को लू लग जाती है। उसी समय गोबर शहर से वापस आता है। गॉव में उत्साह फैल जाता है। घर में आन्नद छा जाता है। गोबर भोला से अपने बैल ले आता है। इस बार होली भी होरी के घर मनाई जाती है जहॉ गॉव वाले सभी महाजनों की नकल उतारते हैं। गोबर फिर भी होरी के रुख तथा उसके विचार को नहीं बदल पाता है। वह पूरी तरह से महाजनों के कब्जे में है इसलिए वह अपने बीबी बच्चों को लेकर लखनऊ चला जाता है।

धनिया और होरी दोनेंा ही उदास हैं, पर जीवन चलाना था। इधर सिलिया नामक एक चमार की पुत्री को होरी ने प्रश्रय दिया था। उसे सोना के विवाह की चिन्ता थी। दुलारी सहुआइन से 200 रूपये नोहरी से कुछ रूपये उधार लेकर होरी ने सोना का विवाह मथुरा से किया जो एक किसान का बेटा था। होरी के जीवन में अन्धकार बढ़ता गया। उसके सिर पर ज्यादा ऋण होने की वजह से तथा तथा अपनी अक्षमता के कारण उसने अपनी जमीन बेच दी और स्वयं मजदूर बन गया।

कथा की इस धारा के बीच एक और कहानी जुड़ी हुई है जो शहर की है। इसका संबंध नागरिक जीवन से है। इलाके के जमींदार राय साहब अमरपालसिंह हैं। उनके मित्रों में पंडित ओंकारनाथ 'बिजली' पत्र के संपादक हैं, जो देश की सेवा करते हैं। श्यामबिहारी एक बीमा कंपनी के दलाल है। मिस्टर बी मेहता युनिवर्सिटी में दर्शनशास्त्र के अध्यापक हैं, मिस मालती लेडी डॉक्टर हैं। रामलीला के धनुष यज्ञ के अवसर पर ये सब मिलते हैं। वे राजनैतिक सामाजिक बाबतों पर अपने-अपने विचार प्रकट करते हैं। वे अपने-अपने मन की बाते करते है। मिर्जा जी एक बड़े जिन्दादिल इन्सान हैं वह जब शाम को खाने के अवसर पर आते हैं तो महेफिल में जान आ जाती है। उसी समय एक अफगान फरियाद लेकर आता है कि गॉव वालों ने उसके एक हजार रूपये लूट लिए। झगड़ा बढ़ता है, होरी आकर खान को जमीन पर पटकता है उसकी दाढ़ी-मूॅछ निकल जाती है और पता चलता है कि वह मिस्टर मेहता है। सब उनकी एक्टिंग देखकर हॅसते हैं। यह मित्र मण्डली आए दिन मिलती रहती है। एक दिन वे सब जंगल में जाते हैं, जहॉ मालती और मेहता में घनिष्टता आ जाती है। वे दोनों अविवाहित हैं पर उन दोनो के विचारों में काफी भिन्नता है। मिर्जाजी बड़े दिलचस्प इन्सान हैं। वे कोई न कोई तमाशा करते ही रहते हैं। इस बार उन्होंने मजदूरों के बीच कबड्डी करवायी। जहॉ देखने वालों को टिकट लेनी पड़ती थी। रायसाहब, खन्ना, मेहता, मालती सभी आए। गोबर भी वहॉ था। वहॉ मेहता ने मिर्जा से कहा कि मालती आदर्श पत्नी नहीं बन सकती है। गोबर को भी उसने नौकरी पर रख दिया। मालती देश-विदेश घूमने वाली लड़की थी और मेहता सीधे-सादे इंसान थे। उन्होंने एक समारोह के भाषण में कहा कि भारतीय आदर्श पर चलना चाहिए। मालती को यह अच्छा नहीं लगा। पंडित ओंकारनाथ रायसाहब से रूपया ऐंठना चाहते थे लेकिन मौका नहीं मिल रहा था तभी उनको पटेश्वरी का एक गुमनाम पत्र मिला जिसमें लिखा था कि रायसाहब ने किस तरह से होरी से बेगार लिया है। इसी पत्र के आधार पर ओंकारनाथ ने रायसाहब से पैसे ले लिए। खन्ना रसिक थे वे उनकी स्त्री को ज्यादा पसंद नहीं करते थे। वे मिस मालती के पीछे थे। मेहता मिसेज खन्ना को एक आदर्श स्त्री मानता है। एक दिन चारों की भेंट चिड़ियाघर में हो जाती है। गोविन्दी (मिसेज खन्ना) मेहता से स्नेह की भिक्षा चाहती है, तब मेहता उन्हें सनतान का पालन पोषण करने को कहता है।

रायसाहब मिस्टर तंखा की काफी तारीफ करते हैं। चुनाव के समय रायसाहब से रूपया मॉगते हैं तब रायसाहब उनको बहुत डॉटते है और खन्ना से उन्होंने पैसो की मॉग की और कहा कि चुनाव और बेटी की शादी साथ में आ रही है लेकिन खन्ना ने इधर उधर की बातें की तभी उन्होंने मालती से उनके प्रेम की बात की। मेहता वहॉ पर आए और कहा कि स्त्रियों के लिए व्यायामशाला खुल गई है। मालती उसकी अध्यक्ष हैं और गोविन्दी उसका शिलान्यास करेगी। खन्ना गुस्से हुए तभी मालती वहॉ आई और उनको झाड़कर एक हजार रूपये भी लेकर चली गई। एक बार खन्ना की मील में मजदूरों ने हड़ताल कर दी। खन्ना के सारे मित्र मजदूरों के पक्ष में थे। इसी में खन्ना की शक्कर की मील राख हो गई। मालती और मेहता सेवा कार्य में लग गये और होरी के गॉव पहुॅचे, होरी ने उनका स्वागत किया। जब वे दोनों गॉव से लौट रहे थे तब वे अपने जीवन के बारे में चर्चा कर रहे थे।

राय साहब के बड़े बेटे रुद्रपाल सिंह का विवाह राजा सूर्यप्रताप सिंह अपनी पुत्री से करना चाहते थे। रायसाहब ने समझा कि मैने अपने पुराने शत्रु को परास्त कर दिया। किन्तु रुद्रपाल मालती की बहन सरोज से विवाह करना चाहता था और उसने अपने पिता से स्पष्ट कह दिया कि वह राजकुमारी को अपनी पत्नी न बना सकेगा, रायसाहब ने मेहता से भी कहा। मिस्टर तंखा रायसाहब और राजासाहब दोनों को बेवकूफ बनाते थे। एक दिन जब वे दोनों व्यक्ति मिले तब तंखा की कलई खुल गई। रायसाहब को हर ओर से निराशा हो रही थी।

मालती और मेहता एक दूसरे के निकट आते हैं। मालती मेहता का बहुत ध्यान रखती है और उनकी हर प्रकार सहायता करती है। दोनों के मन में विचित्र प्रकार के भाव उठा करतें हैं। आखिर मालती तय करती है कि पति-पत्नी बनकर रहने से भी अधिक सुख मित्र बनकर रहने में है। मेहता और मालती का सम्बन्ध मित्रों का हो जाता है।

उपन्यास का अन्त अत्यन्त करुण है। गोबर फिर गॉव लौट आता है। होरी मजदूरी करता है। एक दिन उसे लू लग जाती है और उसकी जीवन लीला समाप्त होने वाली होती है। कई लोगों ने कहा कि " गो-दान करा दो।'' धनिया ने सुतली बेंचकर लाए हुए बीस आने पैसे दातादीन के हाथ रखकर कहा-" महाराज, घर में न गाय है, न बछिया, न पैसा। यह पैसा है, यही इनका गो-दान है।'' और पछाड़ खाकर गिर पड़ती है।

11 - मंगलसूत्र -- 1948

यह उपन्यास प्रेमचन्दजी का अपूर्ण उपन्यास है। प्रेमचन्द जी लगभग इस उपन्यास के 70 पृष्ठ ही लिख पाए थे और उनका देहान्त हो गया। कुछ आलोचकों का कहना है कि प्रेमचन्द ' मंगलसूत्र' में अपनी ही कहानी लिख रहे थे किन्तु उपन्यास के अपूर्ण रूप को देखकर अनुमान भर किया जा सकता है। कोई निश्चित धारणा नहीं बनाई जा सकती है।

कथानक

देवकुमार एक सच्चे साहित्यकार हैं। उन्होंने साहित्य को अपनी कृतियों से समृद्ध किया, किन्तु स्वयं अकिंचन ही बने रहे। उन्हें यश तो मिला किन्तु धन नहीं। उनका बड़ा बेटा सन्तकुमार पिता के इस आदर्शवाद को पसन्द नहीं करता था। नई रोशनी में पला वह युवक जीवन का सुख लूटना चाहता है। छोटा बेटा साधुकुमार पिता के आदर्शों का पोषक है। बदलते हुए जमाने की रफ्तार से देवकुमार को धक्का सा लगता है उनकी आदर्श भूमि डोलती सी दिखाई देती है। वह एक मानसिक झंझावात में पड़ जाता है।

मंगलसूत्र का यह अपूर्ण स्वरूप उपन्यासकार प्रेमचंद की रचना संबंधी एक नवीन दिशा का सूचक होता है। इसमें वह अपने समस्त जीवनानुभवों को देते हैं और जीवन और समाज संबंधी अपने सुलझे हुए निष्कर्षों को भी रखते हैं। पर उनका यह मन्तव्य पूरा नहीं हुआ। और हिन्दी साहित्य एक प्रौढ़ लेखक की कृति से वंचित रह गया।

सन्दर्भ सूची

1.प्रेमचन्द - जीवन और कृतित्व, हंसराज रहबर, पृष्ठ-1
2.प्रेमचन्द: उनकी कहानी कला, सत्येन्द्र, पृष्ठ-1
3.प्रेमचन्द: उनकी कहानी कला, सत्येन्द्र, पृष्ठ-2
4.प्रेमचन्द: उनकी कहानी कला, सत्येन्द्र, पृष्ठ-2
5.प्रेमचन्द- डॉ. जगतनारायण हैकरवाला, पृष्ठ-24
6.प्रेमचन्द- डॉ. जगतनारायण हैकरवाला, पृष्ठ-28
7.प्रेमचन्द- डॉ. जगतनारायण हैकरवाला, पृष्ठ-27
8.प्रेमचन्द: एक अध्ययन-राजशेखर गुरू, पृष्ठ-25
9.प्रेमचन्द: विश्वकोष-भाग-1, कमल किशोर गोयनका, पृष्ठ-28
10. प्रेमचन्द- डॉ. जगतनारायण हैकरवाला, पृष्ठ-27
11. प्रेमचन्द- डॉ. जगतनारायण हैकरवाला, पृष्ठ-27
12. प्रेमचन्द- डॉ. जगतनारायण हैकरवाला, पृष्ठ-28
13. प्रेमचन्द- डॉ. जगतनारायण हैकरवाला, पृष्ठ-29
14. प्रेमचन्द: एक अध्ययन, राजशेखर गुरु, पृष्ठ-30
15. प्रेमचन्द- डॉ. जगतनारायण हैकरवाला, पृष्ठ-30-31
16. प्रेमचन्द घर में- श्रीमती शिवरानी देवी, पृष्ठ-161
17. प्रेमचन्द: विश्वकोष-भाग-1, कमल किशोर गोयनका, पृष्ठ-232
18. प्रेमचन्द: विश्वकोष-भाग-1, कमल किशोर गोयनका, पृष्ठ-237-238
19. प्रेमचन्द: विश्वकोष-भाग-1, कमल किशोर गोयनका, पृष्ठ-243
20. प्रेमचन्द: विश्वकोष-भाग-1, कमल किशोर गोयनका, पृष्ठ-27
21. प्रेमचन्द- डॉ. जगतनारायण हैकरवाला, पृष्ठ-57-58
22. प्रेमचन्द- डॉ. जगतनारायण हैकरवाला, पृष्ठ-58-59